पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति स्मृति संग्रह
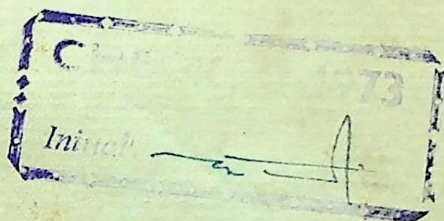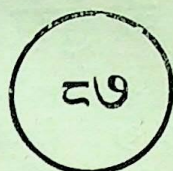
रति-रानी

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का सतासीवाँ पुष्प

रति-रानी

लेखक
रसिकत्रय

मिलन होइहै स्पप्न में, बिछुरत निकसे बैन ;
पै दुखियाँ अँखियाँ कबहुँ, वा बिन पलहु लगैं न ।
(पृष्ठ २०९)

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २।)] सं० १९८९ वि० [सादी १।।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ
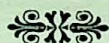
मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

स्नेह-समर्पण

व्रज में विहार करनेवाले नटवर विहारीलाल के

भक्त,

व्रजभाषा में विहार करनेवाले

वैकुंठवासी

कविवर 'विहारीलाल'

के

कर-कमलों में

सादर समर्पित ।

"रसिकत्रय"

परिचय

सुंदर, सुखद और सुहावना समय था। पूर्व दिशा पीला पट पहनकर अपने प्रिय पति प्रभाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। वृक्षों पर बैठी हुई चिड़ियाँ चुचुहाहट के साथ तरह-तरह के तराने और राग-रागिनियाँ गा-गाकर सुना रही थीं। मैदानों में मृग मस्त होकर छलाँगें मार रहे थे। हरी-हरी दूर्वा पर बैठे हुए शशक घास कुतर रहे थे। प्रातःकालीन पावन पवन प्राणी-मात्र को पवित्रता और प्रेम का पाठ पढ़ा रहा था।

तीन मित्र, जिनके मुखारविंद आनंद की आभा से आलोकित हो रहे थे, वायु-सेवनार्थ निकले। धीरे-धीरे उषा का आगमन हुआ। प्रकृति-नटी लाल साड़ी पहनकर नाच उठी। हरिण अपनी प्रिय हरिणियों के साथ विहार करके सबके मन को हरण करने लगे। ससों के लंबे-लंबे और लाल कान उषा की लालिमा से लाल होकर और भी ललित हो उठे। हवा हिला-हिलाकर हर-एक को जगाने लगी। पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी झूला झूलने लगे। पीपल की पत्तियाँ रिमझिम-रिमझिम पड़नेवाली मेह की बूँदों की आवाज़ का अनुकरण करने लगीं।

तीनों प्रेमियों ने घूम-घामकर एक विशाल वाटिका में प्रवेश किया। प्रभाकर ने प्रकट होकर अपने पद-परसन से सबके पापों को पछाड़ डाला। उनके कर-स्पर्श से कोमल कमल कर्कष कपोल होकर खिल उठे। मृग हरे तृण चरने लगे। शशकों के कानों को करमाली की किरणें पार करने लगीं। पक्षियों ने अंतिम गायन गाया। पवन में प्रकाश फैल गया।

एक सघन वृक्षों की कुंज में पड़ी हुई बेंच पर हमारे पूर्व-परिचित प्रेमी जा बैठे। चित्रों की चर्चा चली। गीत गाए गए। साहित्यिक समालोचना सुनाई गई। इस प्रकार प्रेमियों ने प्रेम की पूजा की।

तेजोराशि में से तेज का अंश निकला। कमल की केसर झड़ी। कोयल के कल-कंठ से कुहू-कुहू का सुमधुर संगीत निकला। बुलबुल के मुँह से मीठा बोल निकला। वेगवान् वायु के वेग से वृक्षों की डालियाँ बड़े वेग के साथ हिलने लगीं। प्रेम का पुनीत पदार्पण हुआ। प्रेमियों को प्रेमदेव के दर्शन हुए। प्रेमदेव ने प्रसन्न होकर अपनी प्रतिभा, प्रभा और प्रेम प्रेमियों को प्रदान किया। प्रेम ने उनके अंदर प्रवेश करके उनसे प्रस्तुत पुस्तक लिखने की प्रेरणा की।

प्रकृति के प्रधान और प्रिय पुत्र पाटल में पैठकर प्रेमियों ने इस पुस्तक के पाठों को पढ़ा और अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया।

उन्हीं महाकवि प्रेम की प्रेरणा का पुष्प-स्वरूप यह पुस्तक है; और उन्हीं की प्रेयसी रति-रानी के पद-पद्मों में यह पुष्प चढ़ा दिया गया है। उक्त रानीजी को प्रसन्न करने के लिये पुस्तक का नाम भी उनके पीछे रति-रानी रक्खा गया है।

प्रेम ही परमेश्वर है; और यह प्रेम की रानी हैं। अतः प्रेम-पुष्प पाकर यह प्रसन्न होंगी, और हमारे साहित्य के स्रोत को फिर सरस बनाकर हमारा सुमनोरथ सफल करेंगी, ऐसी आशा की जाती है।

प्रवीण पाठकों से प्रार्थना है कि प्रस्तुत प्रेम-पुष्प के परिमल की परवा न करके, रति-रानी के उपासकों की भक्तिपूर्ण उपासना को ध्यान में रखते हुए, इस प्रेम-पुष्प को प्रेम-दृष्टि से देखें और जिस उद्देश्य से यह रति-रानी को अर्पित किया गया है, उसकी पूर्ति करने में प्रयत्नशील हों।

भूमिका

'साहित्य'

अँगरेज़ी-भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है 'Necessity is the mother of invention', अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की जननी है। किसी भी सुसंगठित इतिहास-प्रसिद्ध सभ्य समाज के आध्यात्मिक जीवन को सरस बनाए रखने के लिये उच्चकोटि के साहित्य की आवश्यकता होती है। हमारे पुरातन और समस्त आधुनिक शास्त्रकारों को इस सारगर्भित शब्द 'साहित्य' के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं था, और न है। अतएव इसको परिभाषा (Definition) की सीमा में बाँध देने का उन्होंने कभी प्रयत्न तक नहीं किया और शब्दार्थ से समष्टि, एकत्रता, सहायता का भाव इत्यादि का बोध होने पर भी साहित्य शब्द के पर्याय में आज तक, काव्य, विद्या, शास्त्र, शास्त्र-समूह, पुस्तक-समूह, इत्यादि व्यापक अर्थों का निस्संकोच प्रयोग होता आया है।

अँगरेज़ी-भाषा में हम देखते हैं कि इस शब्द की भाव-व्याप्ति को पृथक्-पृथक् विद्वानों ने पृथक्-पृथक् परिभाषाओं में सीमाबद्ध करने की चेष्टाएँ की हैं, परंतु यथेष्ट सफलताजन्य एकमत आज तक नहीं हो सका है। कई कहते हैं, Literature is criticism of life (Arnold) अर्थात् साहित्य मानव-जीवन की आलोचना है, और वास्तव में यह बात भी कई अंशों में सत्य है। मानव-विचारों का एक धर्म अपने जीवन के भावों की आलोचना करना भी है। वास्तव में साहित्य में सत्य और अदमनीय यथार्थता (Sincerity)

का जिसको कि कारलाइल महोदय ने सच्चे साहित्य का सबसे सच्चा और खरा गुण माना है, तब तक सम्यक् समावेश नहीं हो सकता, जब तक मानव-विचार-स्फूर्तियों का अपने जीवन-कृत्यों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं हो जाता। जब तक वे विचार-स्फूर्तियाँ अपने जीवन पर आलोचक की दृष्टि से भाव प्रकट कर अपनी उपादेयता नहीं सिद्ध कर देतीं, तब तक उनकी स्थिति का कोई स्थायी प्रमाण नहीं माना जा सकता। अतएव वास्तविकता की दृष्टि से साहित्य की व्याख्या व समीक्षा यों अवश्य की जा सकती है, परंतु वह अधूरी है। केवल "जीवन की आलोचना" से ही साहित्य-शब्द की व्याप्ति निदर्शित नहीं की जा सकती। शब्द का क्षेत्र और भी विस्तृत है। एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान् ने साहित्य की व्याख्या और ज़्यादा विस्तृत, परंतु तो भी अपूर्णरूपेण की है। यथा—Literature consists of the best thoughts of best persons reduced to writing." अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के सर्वश्रेष्ठ विचारों की लिपिबद्ध संहति को साहित्य कहते हैं। यह व्याख्या पूर्वापेक्षाकृत अवश्य ज़्यादा व्यापक है, परंतु यदि हम इसे एक बार मान भी लें, तो भी यह नहीं जान सकते कि साहित्यांतर्गत 'सर्वश्रेष्ठ विचारों' की विशेषता क्या है, और उनके उत्पादन के ढंग क्या हैं। सारांश, यह व्याख्या केवल मस्तिष्कोपयोगी है, हृदयग्राहिणी नहीं। इसी तरह अन्यान्य विद्वानों ने भी इस बृहत् शब्द की व्याख्या करने की—गागर में सागर भर देने की—चेष्टा की है, परंतु सफलता कहाँ?

साहित्य-शब्द की व्याप्ति और उसका दिव्यरूप

हमारे विचार से तो साहित्य की सीमा उसी प्रकार निर्धारित नहीं की जा सकती, जिस प्रकार मानव-विचार की अथवा परमात्मा के अस्तित्व की। साहित्य मानव-जीवन के उत्कृष्टतम विचारों का समुज्ज्वल, विशुद्ध, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, दिव्यस्वरूप, आदर्श-मात्र है। दर्शन-शास्त्र के सिद्धां-

तानुसार आदर्श की व्याप्ति निस्सीम है ; वह प्रत्येक क्षण गमनशील, उन्नतिशील है ; जड़-स्थविर नहीं । यह आदर्श सृष्टि के आदि-काल से मानव-विचारों का साथी रहा है । इसीलिये 'साहित्य' कहलाता है और प्रलयोपरांत भी उस चित्शक्ति के साथ रहेगा, जिसका वर्णन भर्तृहरि ने इस अद्वितीय श्लोक में किया है—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्ताचिन्मात्रमूर्तये ;
स्वानुभूत्यैकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।

हमारी तो यह भी दृढ़ धारणा है कि तद्रूप तद्गुणान्वित होने के कारण साहित्य का सृष्टि-कर्ता की विभूतियों के साथ अभिन्नत्व का संबंध है । अतएव भर्तृहरि का उद्धृत श्लोक परमात्मन् और साहित्यात्मन् जगदीश्वर दोनों की आराधना के अर्थ में समान भाव से प्रयुक्त हो सकता है ।

साहित्य-वृद्धि की कठिनाइयाँ

हमें यह प्रकट करते हुए अत्यंत हर्ष होता है कि हमारे हिंदी-साहित्य के व्यापक रूप को अलंकृत और सुसंगठित करने के लिये मातृभाषा-सेवकों ने प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया है, और दिन-प्रतिदिन वे इस देव-मंदिर को सर्वांगसंपन्न करने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं । देश-सेवा, समाज-सेवा, और ईश-सेवा का इससे श्रेष्ठतर कोई अन्य मार्ग नहीं हो सकता । परंतु जहाँ कई सद्विचारप्रेरित मातृभाषा के सच्चे सेवक रात-दिन अपनी आदर्श-सिद्धि के शुभकार्य में लगे हुए हैं, वहाँ कई एक दूसरे, बुद्धिहीन, प्रतिनिविष्ट धी, मिथ्यायशलिप्सु और प्रतिष्ठा-लोभी पुरुष अपनी वाक्-स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर ऐसे सच्चे सेवकों के शुभ-कार्यसंपादन में विक्षेप और विघ्न डालने के लिये भी उद्यत रहते हैं । प्रायः देखा गया है कि इस प्रकार के विक्षेपकारी पुरुष या तो ईर्षा-वश अच्छे-अच्छे लब्ध-प्रतिष्ठ सहित्य-सेवियों की उत्कृष्ट कृतियों का भद्दा

अनुकरण कर यश-प्राप्ति की चेष्टा करते हैं, जिससे कि सच्चे साहित्य-सेवियों के कार्य में बाधा पड़ती है; अथवा ये मिथ्याभिमानी लोग जन-समाज की प्रसन्नता के हेतु बेचारे कार्य कर्ताओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्रों को भयंकररूपेण विस्फारित कर निर्बोध जनता के समक्ष प्रकट करते हैं, तथा लेखक की चमत्कारोत्पादिनी, यथार्थ गुण-दर्शिनी विशेषताओं को छिपाए रखते हैं ; जिससे कि व्यर्थ ही बेचारे साहित्य-सेवी अथवा कवि की आत्मा को दुःख होता है, और उसे अपने कार्य में अरुचि और विरक्ति होने लगती है। आश्चर्य तो यह है कि जड़बुद्धि और अपने हिताहित को स्वयं न विचार सकनेवाला समाज ऐसे पतित जनों को भी 'समालोचक' के उच्च, गौरवपूर्ण पद से अलंकृत कर देता है।

साहित्य अनुकरण का वांछनीय आदर्श

हमारे उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं हैं कि अनुकरण करना साहित्य की दृष्टि से कोई पाप है, अथवा साहित्यिक आलोचना करना कोई बुरी बात है। इसके विपरीत अनुकरण को हम साहित्य का एक उत्कृष्ट साधन मानते हैं और आलोचना को साहित्य का सर्वश्रेष्ठ हित-संवर्धक मार्ग। यों तो देखा जाय, तो विश्व में समष्टि की स्थिति अनुकरण-साधन के द्वारा सुसाध्य है, और उसी पर प्रायशः निर्भर है। काव्य-शास्त्र प्राकृति-सौंदर्य और मानव-प्रकृतिसौंदर्य का एक आभास-मात्र है। सरांश, अनुकरण एक पवित्र और उपादेय स्वाभाविक वृत्ति है। परंतु साथ-ही-साथ यह भी देखना है कि अनुकरण का सदुपयोग करना ही हमारा कर्तव्य है ; उसका दुरुपयोग करना नहीं। और, हमें तो केवल अनुकरण के दुरुपयोग के प्रति आपत्ति है। रही यह बात कि सदुपयुक्त अनुकरण और दुरुपयुक्त अनुकरण में क्या अंतर है, यह तो साहित्य के परिशीलन करनेवाले सहृदय देखते ही पहचान सकते हैं। इस पहचान का संबंध व्यक्तिगत हृदय

के साथ है। इसके लिये किसी प्रकार के नियम अथवा सूत्र न तो बने हैं, और न बन ही सकते हैं।

साहित्यिक भावापहरण का दोषापहरण

कुत्सित अनुकरण के अंतर्गत भावापहरण (Plagiarism) का दोष भी देखा जाता है। इससे भी साहित्य का बहुत अहित हो रहा है। साहित्य की चोरी वर्तमान हिंदी की अवस्था में एक साधारण व्यापार हो रहा है। उसके अवरोध के लिये हिंदी-साहित्य-शासक-मंडली में अब तक कोई उपयुक्त न्यायालय भी व्यवस्थित नहीं हो चुका है। अतएव अपहरणकर्ताओं का भी उत्साह, इस अंधेर को देखकर, बढ़ चला है और वे दिन-दहाड़े भावापहरण कर मालामाल हो रहे हैं। यही नहीं, वर्तमान हिंदी-जगत् में उन्हें अपनी इस अपहरण दक्षता के लिये प्रतिष्ठा-पुरस्कार की भी प्राप्ति होते देखी गई है। इस कुव्यवस्था को मिटाने के लिये सच्चे समालोचकों की एक परिषद् (Academy of Literary Critics) की आवश्यकता है, जो निष्पक्ष भाव से न्याय करती हुई यह निर्णय कर सके कि अमुक अनुकरण तो साहित्य के लिये अहितकर है, जो यथार्थ में किसी प्रतिष्ठित कवि की ईर्षावश चोरी कही जा सकती है; और अमुक अनुकरण सदुपयुक्त अतएव साहित्यिक हित-संवर्धक है। इसी प्रकार यही परिषद् भावापहरण के दोष और गुणों को भी पहचान कर यह घोषित कर सके कि अमुक भावापहरण तो, केवल कवियों के भावों का अकस्मात् सामंजस्य-मात्र है और अमुक भावापहरण चोरी है। परंतु जब तक इस प्रकार की किसी प्रतिष्ठित और सम्मान्य परिषद् का हिंदी-जगत् में आविर्भाव नहीं होता, तब तक साहित्योत्पादनकार्य को सच्चा उत्साह नहीं मिल सकता और न तब तक हिंदी-साहित्य में किसी प्रकार की व्यवस्था ही स्थापित हो सकती है।

आदर्श आलोचना का दिव्य स्वरूप

आलोचकों के विषय में यही कहा जा सकता है कि आलोचक समाज के साहित्यिक जीवन का अग्रगण्य नेता और पथ-प्रदर्शक होता है। उसका कर्तव्य हंस की तरह नीर-क्षीर-विवेचन करना है। दूध से पानी को पृथक् करने के सिवा उसका एक और विधेयात्मक धर्म है और वह यह कि उसे हमेशा गूढ़ान्वेषिणी दृष्टि द्वारा समाज के साहित्यिक जीवन को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखते रहना चाहिए। जहाँ कहीं किसी आशाजनक प्रतिभा को स्फुरित होते देखा, तो चाहे वह सांसारिक-हीन दशा में हो, अथवा उन्नत दशा में; चाहे वह कमल के हृदय में प्रादुर्भूत केशर के रूप में हो, अथवा कीचड़ में फँसी हुई, उसके श्लिष्ट हृदय को चीरकर बाहर आने का प्रयास करती हुई नलिनी के रूप में; समालोचक का यही परम धर्म है कि वह सूर्य-करों की भाँति अपने सहायक भुजाओं को फैलाकर विकासावरोधी कर्दम का शोषण करे और नलिनी के विकास को सहायक हो। यह तो हुआ समालोचक का विधेयात्मक ब्रह्मा और विष्णु स्वरूप।

समालोचक को संहारात्मक भयंकर रुद्र का रूप धारण कर साहित्य-वंचकों, परछिद्रान्वेषकों और मिथ्या-यशलिप्सुओं का संहार करना भी धर्म है। संहार के बिना सृष्टि-विधान या सृष्टि-रचा नहीं हो सकती, जिस प्रकार कँटीली और हानिकारक वनस्पतियों को काटे बिना खेत में बीजारोपण नहीं हो सकता। इस कठोर शासन-कार्य को करते हुए यदि उसने पक्ष अथवा करुण-भाव से प्रेरित हो नियमित दंड की कठोरता को शिथिल कर दिया, अथवा अयथार्थ दंड दे दिया, तो ईश्वर और समाज की दृष्टि में उत्तर-दायित्व और अधिकार का दुरुपयोग करने के हेतु वह दोषी हो चुका। सच्चा समालोचक त्रिदेव की तीनों विभूतियों को धारण करनेवाला परमात्मा

का स्वरूप है, और हमें उसकी इसी प्रकार प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

सच्चे समालोचक का दिव्य रूप हम ऊपर दिखा चुके। अब हम समालोचक द्वारा प्रयुक्त और प्रयोजनीय कई एक साहित्य-साधनों की चर्चा करेंगे। हमें यह प्रथम ही अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक हिंदी-साहित्य में आदर्श समालोचक का नितांत अभाव है। परिणामतः समालोचना के विविध साधनों का विशुद्ध रूप में प्रयोग भी इस समय दृष्टिगोचर नहीं होता। जो कुछ आलोचना होती भी है या तो वह अत्यंत कठोर वाग्बाण-प्रहारों के रूप में की जाती है, अन्यथा अतिशय प्रशंसा और चाटुकारिता से भरी होती है। यथार्थ प्रशंसा किंवा यथार्थ निंदा का सब ओर लोप-सा हो गया जान पड़ता है।

आलोचना के प्रकार

आदर्श समालोचना के, भारतीय और पाश्चात्य साहित्यकारों के मतानुसार, दो मोटे भेद किए जा सकते हैं। एक तो वाच्यार्थ समालोचना, जिसके द्वारा किसी साहित्यकृति के गुण-अवगुणों का विवेचन, यथार्थ और सीधे-सादे ढंग से स्पष्ट प्रशंसा अथवा निराकृति के रूप में किया जाय। दूसरी लक्षणा-मूलक व्यंग्य-समालोचना। पहली स्फुट, स्पष्ट, रूक्ष, सीधी-सादी, यथार्थ-प्रदर्शक आलोचना है। वह सरलतया बुद्धि-गम्य है अवश्य; परंतु, रोचकता का उसमें नितांत अभाव होता है। अब स्थायी साहित्य का तथा काव्य का हमारे रीतिकारों ने रोचकता एक आवश्यक गुण और लक्षण बताया है। यथा—'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली' अथवा यथा—'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' (हम यहाँ 'काव्य' का विशेष व्यापक अर्थ 'साहित्य' लेते हैं जैसा कि पहले कह आए हैं)। वास्तव में रस-विहीन वाक्य साहित्य के किसी भी अंग का अंगीभूत नहीं

हो सकता। समालोचना भी रोचक ढंग से की जा सकती है। वह भी रसात्मक बनाई जा सकती है। ऐसी समालोचना ज़्यादा हृदय-ग्राही, ज़्यादा मनोरंजक, अतएव विशेष काव्य-गुण-संपन्न होने के कारण साहित्य की अपेक्षाकृत ज़्यादा बहुमूल्य, स्थायी संपत्ति समझी जा सकती है और पाश्चात्य साहित्यों में अब भी समझी जाती है। परंतु हिंदी-साहित्य में अभी तक इस साहित्यांग को रोचक, काव्यगुणसंपन्न और हृदय-ग्राही बनाने के कोई पूर्वचिह्न भी दिखाई नहीं देने लगे हैं, इसका हमें खेद है। आशा है, समय-परिवर्तन के साथ यह कमी भी शीघ्र पूर्ण हो जायगी।

रोचक आलोचना-शास्त्र

प्रकार-भेद से दूसरी समालोचना भी कई प्रकार की होती है। हिंदी में इनका नितांत अभाव होने के कारण हम विस्तृत अँगरेज़ी तथा संस्कृत-साहित्य से लेकर इनके दृष्टांत और रीति उद्धृत करेंगे। अँगरेज़ी-साहित्य में रोचक आलोचना के अंतर्गत कई भेद हैं। यथा—

(१) Farce अर्थात् (प्रहसन अथवा दुर्म्मिलिका), (२) Burlesque (भांड अथवा भाण), (३) Redicule (हेला), (४) Satire (आक्षेप), (५) Parody (अनुकरणम् अथवा अनुकरण-काव्यम्)। ध्यान रहना चाहिए कि आलोचना के इन रोचक साधनों को अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अँगरेज़-साहित्यिक महारथियों ने अपनाया था, और इनके द्वारा अपने साहित्य की बड़ी सेवा कर उसे परिष्कृत और देदीप्यमान् बनाया था। अँगरेज़ी-गद्य-लेखक-शिरोमणि डॉक्टर जानसन, आक्षेप-काव्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक कविवर पोप, अँगरेज़ी-उपन्यास-साहित्य के जन्म-दाता फीलिंडग महोदय, आलोचक-श्रेष्ठ ड्रायडन तथा सर्वश्रेष्ठ प्रहसनकार स्विफ्ट तथा वाल्टेयर (फ्रेंच) और आधुनिक समय के आलोचनात्मक अनुकरण के मुख्य लेखक हिल्टन, स्टीफन्स, स्टौडार्ड वॉकर इत्यादि महानुभावों ने

आलोचना के इन्हीं रोचक साधनों के द्वारा अँगरेज़ी-साहित्य को आज इतना परिष्कृत और विशुद्ध बना दिया है कि वंचक लेखकों की किसी भी प्रच्छन्न रूप में उसमें गति नहीं होती, तथा अँगरेज़ी-साहित्य आज संसार के समस्त साहित्यों को अधिकृत करके सर्वोपरिस्थित है। भारतवर्ष सदा से गुणग्राहिता और उदार-हृदयता के लिये प्रसिद्ध रहा है। अतएव साहित्य-सेवा की आकांक्षा रखनेवाले हमारे भाइयों को उचित है कि वे सर्वदा अन्यान्य-देशीय साहित्यों से विशिष्ट ज्ञानोपार्जित कर हमारे क्षुद्र हिंदी-साहित्य को परिपूरित करें, और उसे भारत-जैसे विशाल और विश्व-प्रसिद्ध देश के लिये गर्व का विषय बनावें।

साहित्य में नवीनता का प्रवाह और उसके अवरोध

हमें यह जानकर भी अत्यंत दुःख होता है कि हिंदी-साहित्य की वर्तमान संकुचित अवस्था पर खिन्न होते हुए भी हमारे कई एक लब्ध-प्रतिष्ठ, साहित्य-सेवी, पथ-प्रदर्शक नवीनता के नाम पर चिढ़ते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय, तो नवीनता कोई घृणित वस्तु नहीं है। नवीनता प्रकृति का सौंदर्य, विश्व के विकास-सिद्धांत की प्रथम श्रेणी और ईश्वर की विभूतियों के विकास का सीधा मार्ग-सच्चा साधन—है। नवीनता के विना साहित्य और काव्य नीरस और रूक्ष प्रतीत होता है। नवीनता रुचि और रस की जननी है। तभी तो एक संस्कृत के महाकवि ने उसको काव्य की आत्मा, रमणीयता' का तादात्म्यरूप दे दिया था, यथा 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः'। हाँ, नवीनता का तब तक हमें विरोध अवश्य करना चाहिए, जब तक वह निरा भद्दा अनुकरण-मात्र हो, अथवा निरु-पादेय हो। अन्य किसी कारणवश नवीनता का विरोध करना अथवा उसके प्रति विरक्ति के भाव प्रकट करना साहित्य-तड़ाग के समस्त जलागम मार्गों का अवरोध करना-मात्र होगा। अन्य किसी साहि-

त्यिकहानिप्रद कारण के न होते हुए केवल यों ही नवीनता को बुरा बताना, अपने हृदय में पैठी हुई असामर्थ्य और तज्जन्य ईर्ष्या के भावों का परिचय-मात्र देना है। हमारी समझ में, प्रतिभा के प्रथम स्फुरणकाल में, कई एक युवक भी नवीन-नवीन साहित्यिक आदर्शों को हृदय में भरे हुए साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होकर नए-नए साहित्यांगों को पूर्ण करने के लिये तभी उद्यत हो जायँगे, जब उनकी कोमल (Sensitive) आकांक्षाओं और उच्च आदर्शों का विरोध करनेवाले जटिल-बुद्धि और जड़-हृदय दुरालोचक अपना हठ छोड़कर उनका स्वागत करने लगेंगे। क्या हमें यह मालूम नहीं है कि इसी प्रकार की कोमल महत्त्वाकांक्षिणी युवा प्रतिभाओं के तिरस्कार-जन्य दुराशिष् से हमारे हिंदी-साहित्य की आज यह अधोगति हो रही है? क्या हमें अब भी, 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति'-वाली उक्ति को हृदय में रखकर अपनी पूर्व-कृत अनुदारताओं और पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर डालना चाहिए। संसार के और-और साहित्यों की ओर देखकर भी हमको अपनी आत्मघातिनी नीति को बदल देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्या हमें संसार का इतिहास प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं कर बताता है कि अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्य-सेवियों के प्रति इस प्रकार का अत्याचार करने के लिये आज भी अँगरेज़ी-साहित्य, फ्रेंच-साहित्य, संस्कृत, ग्रीक और लैटिन-साहित्य, यही क्यों, पृथ्वी-मंडल के प्रायः समस्त साहित्य लज्जा के मारे नतमस्तक हो रहे हैं! क्या हमें, डांटे, शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, चैटरटन, भवभूति और भास इत्यादि कविवरों के दृष्टांत शिक्षा देने को पर्याप्त नहीं हैं? क्या महाकवि भवभूति की, "उत्पत्स्यते मम कोऽपि समानधर्मा, कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" वह गर्वपूर्ण अपील हमारे मन के मोह को नहीं मिटा सकती? यदि हमारी ऊपर लिखी हुई अपील में

कुछ भी तथ्यांश है, तो जिनके कंधों पर साहित्य का भार और उत्तरदायित्व है, उनको अपनी वर्तमान संकुचित नीति में, साहित्य की हित-दृष्टि से, उदारता का समावेश अवश्य करना योग्य है। हमें विश्वास है कि आज जब चारों ओर देश-सेवी महानुभावों का देशोत्थान के हेतु प्राणपण से प्रयत्न हो रहा है, उस शुभ आशागर्भित काल में साहित्यिक दिग्पालों को भी उपनिषद् के इस वाक्य की निस्संकोचरूपेण घोषणा कर देनी उचित है—"उत्थातव्यं जाग्रतव्यं प्राप्य वरान्निबोधत:"

रतिरानी का साहित्य में स्थान

प्रकृत-प्रयास के उपलक्ष में विनय करते हुए तथा रतिरानी को भेंट करते हुए हम पाठकों के प्रति अपने मंतव्य को संक्षेप में प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'रतिरानी' के लेखकों ने उसे लिखने में और साहित्य-क्षेत्र में उपस्थित करने में आलोचनात्मक दृष्टि को ही प्रधानता दी है। इसे भेंट करते हुए, कवि होने का अथवा निर्दिष्ट आदर्श के अनुसार समालोचक होने का वृथा गर्व वे नहीं करते। उन्होंने तो केवल इस रोचक आलोचना के नवीन मार्ग का उद्घाटन कर प्रतिभासंपन्न कवियों और आलोचकों के प्रति प्रयोगात्मक (Practical) रूप में यह निवेदन करना चाहा है, जिससे कि वर्तमान और भविष्य के उज्ज्वल पथ-प्रदर्शक, साहित्य-सेवक इस मार्ग को आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा करें। यों तो हमारे हिंदी-साहित्य में अभी कई अंग रिक्त हैं, जिनको केवल यथार्थ प्रयास और सच्ची चेष्टा के बल हमारे उत्साही विद्वान् परिपूर्ण कर सकते हैं। हम कहाँ तक गिनाएँ, अपने विविध अंगों और प्रभेदों के सहित नाटक-साहित्य, गल्प-साहित्य, निबंध, आलोचना, पत्र-साहित्य, जीवन-चरित्र (पर और स्वलिखित) इत्यादि सभी साहित्यांगों को परिपूर्ण करना हमारा धर्म है। इस सामाजिक युग में, जब कि हम समस्त संसार की उत्कृष्ट

प्रतिभाओं का मिलन घर-बैठे नित्यप्रति पुस्तकों द्वारा कर सकते हैं, यदि हम आलस्य में बैठे रहे, तो अवश्य ही हमें पीछे पछताना पड़ेगा। हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिये और भारत का अन्य राष्ट्रों की मंडली में मुख उज्ज्वल करने के लिये यह परमावश्यक है कि हम अभी से सजग और सचेष्ट हो जायँ। कर्मयोग में दृढ़ता के साथ प्रवृत्त होना हमारा धर्म है, फल जगन्नियंता के अधीन है।

यह 'रतिरानी' रोचक आलोचना के अंतिम प्रकारांतर्गत एक अनुकरण-काव्य (Parody) है। अनुकरण-काव्य किसे कहते हैं, इसका आदर्श लेखकों ने कहाँ से लिया है ; इसकी उपादेयता के क्या प्रमाण हैं ; हमारे पुराने संस्कृत साहित्यिक रीतिकार इस प्रकार के साहित्य की रचना करने के लिये अनुमति देते हैं अथवा नहीं ; अनुकरण-काव्य के पूर्व-दृष्टांत भी हमारे साहित्य में कहीं मिलते हैं अथवा नहीं ; प्रकृत पुस्तक के लिखने के क्या कारण हैं, तथा यह साहित्य की किस-किस प्रगति की रोचक आलोचना है—इन सब प्रश्नों का अति संक्षेप में हम पाठकों के समक्ष विवेचन करने का अब प्रयत्न करेंगे। पाठक-वर्ग पुस्तक को लेखकों की आकांक्षाओं के अनुकूल संपादित पावेगा अथवा नहीं, इस विषय में सहृदय पाठक ही प्रमाण हैं, हम कुछ नहीं कह सकते।

अनुकरण-काव्य

हिंदी-साहित्य के लिये अनुकरण-काव्य (Parody) एक बिलकुल नवीन काव्यांग है। न तो इस साहित्यांग का यही नामोल्लेख ही, और न इसका यही रूप ही संस्कृत साहित्यकारों के विचारांतर्गत आया है। ऐसा कहने से हमारा आशय यह नहीं है कि इस ढंग के रोचक आलोचनात्मक साहित्य का हमारे विस्तृत संस्कृत-साहित्य मे अनस्तित्व है, और न हम यह कह सकते हैं कि इस ढंग के साहित्य के दृष्टांतों का ही अभाव है। इसके विपरीत, हम यह प्रमाणित करने

की चेष्टा करेंगे कि इस काव्यांग-विशेष को संपादित करने में हमारे साहित्यकारों की शास्त्रीय अनुमति अवश्य ली जा सकती है। विस्तृत संस्कृत-साहित्य में से लेकर हम कई एक रीतियाँ सोदाहरण अपने लेख के उत्तर भाग में उद्धृत करेंगे, जिनके आधार पर साहित्य में परमोत्कृष्ट कोटि के रोचक आलोचनात्मक काव्य, यथा प्रहसन, भाण इत्यादि तथा अनुकरण-काव्य लिखे जा चुके हैं।

सर्वप्रथम हम निस्संकोच भाव से और स्पष्ट-स्पष्ट यह कह देना चाहते हैं कि इस नूतन ढंग के काव्य के रचने के लिये हम आधुनिक अँगरेज़ी-साहित्य के उतने ही ऋणी हैं, जितने कि हमारे पुरातन संस्कृत साहित्य के। इसका आदर्श हमने अँगरेज़ी और संस्कृत दोनों साहित्यों के अनुकूल स्थापित किया है। अतएव स्वाभाविक ही है कि हम अपने उपकारियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करें, और उनकी निर्दिष्ट रीतियों का उल्लेख यहाँ करें।

अनुकरण-काव्य की परिभाषा व व्याख्या

अँगरेज़ी में अनुकरण-काव्य को हास्य-रस-प्रधान काव्य माना है। साहित्यिक हित-चिंता को हास्य-रस पर अवलंबित कर गद्य अथवा पद्यमयी रोचक आलोचना की रचना करना ही अनुकरण-काव्य को जन्म देना है। यहाँ हम जुलाई मास, सन् १८९५ ई०, के क्वारटरली रिव्यू (Quarterly Riview) के इस विषय के एक लेख में से उद्धृत कर अनुकरण-काव्य की परिभाषा को दे देना पर्याप्त समझते हैं। यथा—

"A Composition either in Verse or Prose modelled more or less closely upon an original work or class of original works—but the turning the serious sense of such originals into ridicule by its method of treatment."

अर्थात् "गद्य अथवा पद्यमयी ऐसी रचना जो किसी मौलिक ग्रंथ अथवा ग्रंथ-श्रेणी के आधार पर लिखी गई हो—परंतु अपने ढंग से इस प्रकार लिखा गई हो कि उन आधारभूत ग्रंथ अथवा ग्रंथ-श्रेणी के गंभीर भावों को उपहास्य-स्वरूप में परिवर्तित कर दे।"

अवतरण का भाव स्वतः स्पष्ट है। परिभाषांतर्गत Ridicule (उपहास) शब्द से हमारा क्या तात्पर्य है, यह भी स्पष्ट कर देना उचित है। इस विषय में हम एक प्रसिद्ध अँगरेज़-आलोचक व रीतिकार महोदय की बड़ी ही मनोहर, रुचिकर और विशद् व्याख्या का यहाँ उल्लेख करते हैं, जिससे कि 'उपहास' शब्द का दोषापहरण होकर उसका समुज्ज्वल दिव्य स्वरूप प्रदर्शित होगा। यथा—

"Ridicule is Society's most effective means of curing inelasticity. It explodes the pompous, corrects the well-meaning eccentric, cools the fantastical and prevents the incompetent from achieving success.

"Truth will prevail over it; falsehood will cower under it and it is true that when reason, indignation, entreaty and menace fail, ridicule will often cause a government to abandon a bill or a lover a mistress."

"अर्थात् किसी समाज के लिये उसकी स्थिति-स्थापकत्व-विहीन अवस्था का निराकरण करने के लिये उपहास सर्वश्रेष्ठ साधन है। उपहास पाखंडी लेखक का गर्व गलित करता है; हितैषी परंतु प्रमत्त लेखक का प्रमाद दूर करता है; मायावी लेखक के माया-जाल का खंडन करता है, और अयोग्य लेखकों को उनकी सरल-सफलता प्राप्ति में बाधक होता है।"

इस पर यह आपत्ति होना स्वाभाविक है कि यह उपहास झूठा और ईर्ष्या-प्रेरित हुआ—तो—? "तो सत्य की इसके विरुद्ध सदा विजय ही होगी, परंतु असत्य का दमन यह अवश्यमेव कर देगा"।

आगे चलकर उपहास-साधन की साहित्यिक और सामाजिक उपादेयता के विषय में व्याख्याता कहता है—

"यह सर्वथा सत्य जानो कि जब विवेक, रोष, विनय और घर्षण (अर्थात् शाम, दाम, दंड, भेद और नीति के सभी प्रयोग) इत्यादि सभी साधन निष्फल प्रमाणित हो जायँ, उस समय उपहास किसी अत्याचारिणी राजसत्ता के अमुक कठोर नियम को दमन करने में सफल हो सकता है, अथवा अमुक प्रेमी को अपनी अनधिकार चेष्टा-पूर्वक किसी प्रेयसी को अधिकृत करने में रोक सकता है।"

अनुकरण की उपादेयता का दृष्टांत

यह तो हुआ उपहास-साधन का प्रकृष्ट बल और उसकी उपादेयता। दृष्टांत रूप में मोटे तौर से हम एक प्रसिद्ध पाश्चात्य कहानी का यहाँ उल्लेख करेंगे। सुनते हैं कि अमेरिका के एक धनी प्रतिष्ठित पुरुष की एक सयानी लड़की को बाल्यावस्था से एक बुरी बान पड़ गई थी। जब-तब वह अपने कंधों को बुरी तरह से सिकोड़कर अपनी चिबुक को बड़ी भद्दी तरह से आगे बढ़ाती हुई भयंकर और बीभत्स रूप प्रदर्शित करती हुई देखी जाती थी। समाज में इसकी बड़ी चर्चा थी। लड़की अतीव सुंदरी होने पर भी अपनी इस स्वभाव-विकृति के कारण कुरूप समझी जाने लगी। उसका पिता इस अपयश के कारण अत्यंत दुःखित था। एक दिन अपने विद्वान् इष्ट-मित्रों से सलाह कर उसने एक विचित्र आलमारी तैयार करवाई, जिसमें उसने दूर-दूर देशों से मँगवाकर बड़ी-बड़ी भयोत्पादक और विकृत-रूप आकारवाली मूर्तियाँ और अन्यान्य कृतियाँ सजा दीं। अब वह लड़की जब-जब उस आलमारी के पास जाती और उसमें रखी हुई

भयंकर चीज़ों को देखती, तो बहुत भयभीत होती। सामने ही रखे हुए विशाल दर्पण में उन चीज़ों को और साथ ही अपनी विकृत आकृति को प्रतिफलित देखती, तब तो वह बहुत डरती और लज्जित भी होती। परिणाम यह हुआ कि समयांतर में धीरे-धीरे उस लड़की की वह बुरी बान छूट गई, और भविष्य में वह समाज में प्रतिष्ठा की पात्र बनी।

इस दृष्टांत से अनुकरण-आलोचना का हूबहू चित्र खिंच जाता है। वास्तव में सच्चे अनुकरण-काव्य के यही लक्षण और उसकी यही उपादेयता है।

अनुकरण-काव्य की सीमाएँ

अनुकरण-काव्य की सीमा निर्धारित करते हुए अँगरेज़-रीतिकारों ने बहुत सोच-विचार और प्रयोगों (Experiments) के बाद में कुछ नियमों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है, जिनका भ्रम-निवारणार्थ निर्देश कर देना हम यहाँ आवश्यक समझते हैं।

महामना सर क्विलर कूच का कथन है कि अनुकरणकर्ता को सदा अपने अनुकरणीकृत मूल-लेखक के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव रखने चाहिए। इस कथन से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अनुकरण-काव्य का कर्तव्य केवल कुत्सित साहित्य के लेखकों के उत्साह का दमन करना ही नहीं है, वरन् अच्छे साहित्य के लेखकों को विख्यात करना तथा उनके प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ाना भी है। वे कहते हैं—

"Admiration and laughter are the very essence of the act or art of Parody. Parody is concerned with poetry—preferably great poetry. It is playing with Gods."

"अर्थात् प्रशंसा और हास्य, ये दोनों व्यापार अनुकरण-कला

के निष्कर्ष सिद्धांत हैं। अनुकरण काव्य का घनिष्ठ संबंध सदा से काव्य-महाकाव्य के साथ रहता आया है। यह व्यापार देवताओं के साथ क्रीड़ा करने के बराबर है।"

अनुकरणाधिकृत विषयों के संबंध में यही कहा गया है कि धार्मिक काव्यों अथवा हृदय के गंभीर मार्मिक भावों (Sentiments) का अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त है। दृष्टांततः अँगरेज़ी-साहित्य में लार्ड टैनिसन की अंतिम कविता "Crossing the Bar" को अनुकरणांतर्गत विषयों से बाहर गिनाया है। इसी प्रकार हमारी समझ में; कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव, जगन्नाथ पंडितराज की गंगालहरी, रवींद्र की गीतांजलि और साधना, तुलसीदासजी की रामायण, सूरदासजी के प्रेमसागर और आधुनिक हिंदी कवियों में 'हरिऔध'जी के प्रियप्रवासांतर्गत गंभीर मार्मिक और धर्म-विषयक भावों का उपहासात्मक अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त और वृथा है।

आदर्श अनुकरणकर्ता

अब प्रश्न यह होता है कि ऐसे पवित्र और आदर्श साहित्यांग को परिपूरित करने का अधिकारी लेखक कौन हो सकता है? स्वाभाविकतः उत्तर यही है कि वही जिसके हृदय में साहित्य-सेवा की सच्ची, स्वर्गीय दृढ़ धारणा विद्यमान है; जो मूल-लेखक के काव्य से पूर्णतया अवगत है और जिसे साहित्य के सच्चे हिताहित का ज्ञान है। वही अनुकरण-काव्य की कला को जान सकता है। वही विवेचन कर सकता है कि कौन-से कवि की रचना का प्रशंसा-गर्भित अनुकरण करके उसकी ख्याति प्रसारित करनी चाहिए और कौन-से का दमन।

अनुकरण-काव्य के प्रकार, भेद

अँगरेज़ी में अनुकरण-काव्य के तीन अंग माने गए हैं। यथा—

(१) शब्दानुकरण-प्रधान काव्य, (२) भावानुकरण-प्रधान काव्य और (३) शैल्यानुकरण-प्रधान काव्य ।

शब्दानुकरण काव्य (Verbal Parody)

शब्दानुकरण-प्रधान काव्य (Verbal Parody) वह है, जिसमें किसी प्रतिष्ठित कवि की सुप्रतिष्ठित कविता के आधार को लेकर जहाँ-तहाँ थोड़े-से शब्द इस ढंग से बदल दिए जायँ कि मूल को सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट न करते हुए भी उससे अन्यार्थ प्रतिपादित कर हास्य-रस का उत्पादन कर दिया जाय । यह भेद अति सरल-साध्य और साधारण है । यथा—अँगरेज़-कवि पोप का एक छंद और उसका शब्दानुकरण—

"Here shall the Spring her earliest *Sweets* bestow,
Here the first *roses* of the year shall blow."

(Pope)

तथा—

"Here shall the Spring her earliest Coughs bestow,
Here the first noses of the year shall blow."

दूसरा दृष्टांत है महाकवि वर्ड्सवर्थ की सर्वप्रसिद्ध कविता—यथा—

मौलिक—

"My heart leaps up when I behold
A rainbow in the sky;
So was it when my youth began;
So is it now I am a man;
So be it when I shall grow old or let me die."

विकृतावस्था में—

My heart leaps up when I behold
A mince-pie on the table ;
So was it when my youthbegan ;

So is it now I am a man;
So be it when I shall grow old, if I am able."

उपरोक्त शब्दपरिवर्तन में विशेषता यह है कि महाकवि वर्डस्वर्थ की उद्धृत कविता की नहीं, वरन् उनके सिद्धांतों की हँसी उड़ाई गई है। देखिए, केवल दो ही शब्दों के परिवर्तन से हास्य-रस की उत्पत्ति किस विचित्र ढंग से की गई है। अनुकरणकर्ता ने पोप महाराज को पोपलीला की पोल खोल दी है। यदि वे सच्चे कवि होते (जिसमें कि अब शंका की जाती है) तो उनकी ये दो पंक्तियाँ इतनी रसविहीन और जड़ न होतीं। तभी तो अनुकरण-कर्ता ने परिवर्तन के द्वारा वसंत की जगह शरद्-ऋतु का आरोपण करके कवि के अकवि हृदय की हँसी उड़ाई है। वास्तव में ऐसी ही कविता की अनुकरणालोचना होनी चाहिए। ये ही अनुकरण के उपयुक्त विषय हैं। अब यदि कोई अज्ञानवश अनधिकार-चेष्टा करे और महाकवि वाल्मीकि की इन मार्मिक भावयंत्रणापूर्ण दो आदि काव्य-पंक्तियों का अनुकरण कर बैठे, तो ऐसा होना असंभव है—

मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमगमः शास्वती समा;
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकं अवधीः काममोहितम्।

उपरोक्त दो प्रकार के भिन्न-भिन्न काव्यों का परिशीलन कर पाठकों को यह ज्ञात हो गया होगा कि अनुकरण-काव्य की सीमा के अंतर्गत कौन-कौन-से विषय होते हैं और कौन-कौन नहीं।

महाकवि वर्डस्वर्थ के बहुत-से नूतन प्रतिपादित काव्य-सिद्धांतों में एक आंदोलनकारी सिद्धांत यह भी था कि वे कविता और गद्य की शब्द-रचना में कोई भेद नहीं मानते थे, और गंभीर-से-गंभीर, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म काव्य-प्रतिभा को प्रकट करने के लिये साधारण-से-साधारण जनता की बोल-चाल की सरल भाषा के प्रयोग करने के पक्ष में थे। उनके ये विचार उस समय के आलोचकों को बिलकुल

नवीन, क्रांतिकारी, और असाध्य से जान पड़े। अतएव उनको ठीक न जँचे। ध्यान रहे कि ऊपर उद्धृत आलोचनात्मक शब्दानुकरण कवि के केवल उस मंतव्य (Theory) की पोल खोलने के हेतु किया गया है, अन्यथा भाव-सौंदर्य और स्वाभावोक्ति की दृष्टि से तो उद्धृत मौलिक कविता अँगरेज़ी भाषा की सर्वसरल और सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण कविताओं में उच्च-कोटि की गिनी जाती है।

अब दुरुपयुक्त अनुकरण-काव्य का भी एक दृष्टांत लीजिए। कारण, अँधेरा और उजेला—दोनों का अनुभव किए बिना, उजेले का पूरा मूल्य ज्ञात नहीं होता। हम यहाँ Mr. Stoddard Walker की माक्सफ़ोर्ड बुक ऑफ़ इँगलिश वर्स (Moxford Book of English Verse यह शीर्षक भी The Oxford Book of English Verse का अनुकरण है) में से आधुनिक आयरलैंड के कविवर यीट्स महोदय की सर्वश्रेष्ठ कविता "The Lake Isle of Innesfree" तथा उसका भद्दा अस्पृहणीय अनुकरण उद्धृत करते हैं—

मूल-पद्य—

"I will arise and go now, and go to Innesfree
And a small cabin build there, of clay and wattles made.
Nine bean rows will I have there, a hive for the honey bee
And live alone in the bee-loud glade."

अनुकरण—

"I will arise now and go to Innesfree
And a small table order, with beer in bottles laid.
Nine Beanos will I have there, a hut for the busy bee
And drink alone in the B. Y. glade."

उद्धृत मूलछंद अपने भावगांभीर्य और आध्यात्मिक विचार-सौंदर्य के लिये आधुनिक अँगरेज़ी कविता के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक समझा

जाता है। अनुकरणकर्ता ने उन परम पवित्र, स्पर्श निषिद्ध, देव-तुल्य भावों को विकृत और विक्षिप्त कर, कैसी अनधिकार चेष्टा की है और परिणामतः कैसी भद्दी असफलता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे। जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उसके (झूठे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—उसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है। टैनीसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण कालवरली ने बड़े रोचक ढंग से किया है। पाठक वर्ग अपने मनोरंजनार्थ ऑक्सफ़ोर्ड सोरीज़ में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक को देखें।

भावानुकरण-प्रधान काव्य

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense-Rendering Parody) यह भेद उच्चतर कोटि का है और कष्टतर साध्य है। किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्य लेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं बड़ा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूलकवि के साथ इतना घनिष्ठ संबंध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। तभी तो वह मूलकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विकारों की नक़ल कर सकता है, अन्यथा वह इस शुभ कार्य का अधिकारी ही नहीं हो सकता। हम यहाँ पर कुछ दृष्टांत देकर यह बतावेंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार संपादित होता है।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton) और स्टीफंस (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

दूसरों की अपेक्षा ज़्यादा सफलता प्राप्त हुई है। हिल्टन ने अर्वाचीन काल के एक श्रेष्ठ अँगरेज़ी-कवि स्विनबर्न के काव्यमय व्यक्तित्व और उनकी समग्र काव्य-प्रतिभा का यों रोचक अनुकरण किया है —

"Ah ! thy red lips, lascivious and luscious
With death in their amorous kiss !
Cling round us and clasp us and crush us
With bitings of agonised bliss ;
We are sick with poison of Pleasure
Dispense us the potion of pain
Ope thy mouth to the utmost measure
And bite us again."

इसे कहते हैं सच्चा और मार्मिक भावानुकरण। पद्यों का पूर्व भाग पढ़ते-पढ़ते यह विश्वास हृदय पर दृढ़ जमने लगता है कि केवल स्विनबर्न ही— केवल "Atlanta in Calydon" काव्य के रचयिता ही यह रचना कर सकते थे। वही उनका स्वाभाविक ओज, वही सुसाध्य पद-लालित्य और भाव-विलास, वही उनकी अप्रतिहत भाव-शक्ति (force of Sentiment) और वही उनका अनिर्वचनीय, रस-मय सरल संगीत-प्रवाह ; वही रति-मूलक शृंगार-रस जो उन्हें सर्व-प्रिय था और वही अनुप्रास और श्लेषादि शब्दाडंबरों का विचित्र चमत्कार—वास्तव में हूबहू उनकी आत्मा की खरी नक़ल (True Copy) है। यदि अब भी किसी को भ्रम हो, तो उनके बहुत-से ग्रंथों को पढ़कर देखे। आख़िर, भेद अंतिम दो पंक्तियों में खुल ही जाता है। वहाँ तक पहुँचकर अनुकरणकर्ता अपने कठिनता से रोके हुए हास को अट्टहास में प्रकट कर देता है। "व्याघ्रचर्मप्रति-च्छन्नो वाकृते रासभो हतः" वाली बात होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि उद्धृत अनुकरण स्विनबर्न कवि के किसी विशेष छंद अथवा छंद-समूह का नहीं है, वरन् उनकी समस्त

काव्यात्मा का है। अँगरेज़ी-साहित्य में यह सर्वश्रेष्ठ भावमूलक अनुकरण कविताओं की कोटि में गिनाया जाता है। दूसरे अनुकरणकर्ता, जिन्होंने इस क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की है, हैं स्टीफ़ंस। उन्होंने अपनी Poetic Lament on the insufficiency of Steam Locomotive in the Lake district में, महाकवि वर्ड्सवर्थ की शैली, पद-रचना, भाषा-सरलता और विषय-सरलता इत्यादि की दृष्टि से, हूबहू नक़ल कर दी है। इस अनुकरण के विषय में आधुनिक आलोचक शिरोमणि सर आरथर क्विलर कूच ने एक बार कहा था "Perfection of Parody" अर्थात् यह अनुकरण-काव्य की श्रेष्ठता की चरमसीमा है।

जिस प्रकार पद्य-काव्यों का रोचक आलोचनात्मक अनुकरण किया जाता है, उसी प्रकार गद्य-साहित्य का भी किया जा सकता है और किया जाता है। वर्तमान युग के प्रायः सभी बड़े-बड़े ख्यातनाम लेखकों का अनुकरण हो चुका है। मैरीडिथ, हारडी, मैटरलिंक, चैस्टरटन, बर्नार्ड शा, विलियम बटलर यीट्स तथा श्रीरवींद्रनाथ टागोर—इन सभी महोदयों ने अनुकरण द्वारा विश्व-विख्याति प्राप्त की है।

शैल्यानुकरण-काव्य

तीसरा प्रकार है शैल्यानुकरण-प्रधान काव्य (Style Parody)। यों तो यह उपभेद दूसरे प्रकार के व्यापक-स्वरूप के अंतर्गत आ ही जाता है, परंतु तो भी पृथक् रूप में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गद्य-पद्य-लेखकों की शैली का अनुकरण किए जाते देखा गया है। अतएव विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता न समझकर हम केवल इस प्रभेद के प्रमुख और सुविख्यात अनुकरणकर्ता तथा उनकी कई एक प्रसिद्ध रचनाओं का उल्लेख-मात्र कर देना पर्याप्त समझते हैं।

अँगरेज़ी-साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक, कवि तथा गद्य-लेखक ऍंड्रू लैंग महोदय ने प्रीरैफ़लाइट संघ के नेता कवि डी० जी० राजैटी

महोदय का अनुकरण किया है, जो अत्यंत रोचक है। जान फिलिप्स ने "Splendid Shilling" में महाकवि मिल्टन की शैली का अत्यंत मनोहर अनुकरण किया है। इसी प्रकार, स्टीफंस, सर ग्रावन सीमन और काल्वरली महोदयों ने पृथक्-पृथक् कवियों और लेखकों की रोचक आलोचना करते हुए अनुकरण काव्य रचे हैं, जिनका कि अँगरेज़ी-साहित्य में अच्छा मान है। श्रीमैक्सवीरभौम महाशय ने जो आधुनिक समय के अँगरेज़ी-निबंध-लेखकों (Essayists) में अग्रगण्य हैं, तो इस ओर यहाँ तक विशेषता दिखलाई कि स्वरचित "Christmas Garlands"-नामक पुस्तक में अपने समकालीन १६ लेखकों से अपनी-अपनी शैली के अनुसार एक ही विषय अर्थात् "Christmas" पर १६ रोचक निबंध लिखवाए हैं, और उन सब पृथक्-पृथक् शैलियों के लिखनेवाले स्वयं श्रीमैक्सवीरभौम हैं। इसी से प्रमाणित होता है कि श्रीमैक्सवीरभौम ने कहाँ तक इन सोलह लेखकों की शैली को अपनाने की शक्ति पैदा कर ली होगी। यह बात किसी जादूगर के खेल से कम विस्मयोत्पादक नहीं है। इसी प्रकार के उच्च कोटि के, शिक्षाप्रद और निष्पाप, मानव-मस्तिष्क शक्तियों का विकास करनेवाले आमोद-प्रमोदों में जिस दिन हिंदी-पठित जनता रुचि और गति प्रदर्शित करने लगेगी, उस दिन से साहित्य की सर्वप्रियता और सामाजिक उपयोगिता अवश्य बढ़ जायगी और साहित्य तथा जीवन के बीच में पड़ी हुई पारस्परिक उदासीनता की वह भयंकर दरार लुप्त हो जायगी कि जिसमें गिरकर आज भी हमारा साहित्य दीन-हीन दशा में है।

रतिरानी के विषय में दो बातें

पाठको, यह 'रतिरानी' एक भावानुकरण-प्रधान हास्य-मूलक अनुकरण-काव्य (Parody) है। श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय महाकवि बिहारीलाल की कविता के असंख्य अनुकरणकर्ता, उत्तरकालवर्ती दोहाकार

कवियों की कविता ही इसका आधार है। महाकवि की आत्मा को प्रसन्न करने के लिये ही हमने यह प्रयास किया है और उनके अर्थ किया हुआ यह प्रयास हम उनके ही श्रीचरणों में अर्पित करना अपना प्रथम धर्म समझते हैं। हम यह पहले से ही मानने को तैयार हैं कि कवियों की शैली, पदावली और भाव-सौष्ठव का अनुकरण करने में हमने बहुत कुछ त्रुटियाँ की होंगी, परंतु इस ओर यह प्रथम प्रयास है। बहुत-से अन्य भ्रातृलेखक इस क्षुद्र प्रयास को देखकर उत्साहित होंगे। त्रुटि को पूर्ण करना उनका काम है। दोहों के साथ टीकाओं को लिखते हुए भी लेखकों ने प्रत्येक क्षण हिंदी-साहित्य की एक प्रचलित प्रगति को ध्यान में रक्खा है। प्रत्येक टीका में लेखकों ने उन हमारे रँगीले टीकाकारों की विचित्र शैली, अनुप्रास, श्लेष और अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा, और असंगत बातों के समावेश से परिपूरित, अति विस्तारपूर्ण, भंग की तरंग में लिखी जानेवाली व्याख्या—मतवाली व्याख्या—का अनुकरण किया है। हमारा तो यह मत है कि बिहारीलाल ने दोहे-जैसे छोटे छंद रूपी "गागर में सागर" भरकर साहित्य में जितना अद्वि-तीय चमत्कर पैदा किया है और अमर, स्थायी यश प्राप्त किया है, उतना ही अपयश, अपनी भद्दी और बेतुकी, असगत और अति-विस्तृत व्याख्या लिखकर, उस गागर के सागर को उलीच डालने का वृथा प्रयास कर इन मनमौजी मतवाले टीकाकारों ने कमाया है और अपने-आप अपनी हँसी कराकर अपने भाल में कलंक का टीका लगवाया है। उनसे कहीं ज़्यादा अपयश उन नक़्क़ाल दोहाकार कवियों ने कमाया है, जिन्होंने विहारी-जैसा अननुकरणीय प्रतिभा का अनुकरण कर और दोहे-जैसे छोटे छंद ("देखत में छोटे लगैं घाव करें गंभीर" ऐसे, "सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर") का बनाना अत्यंत सरलसाध्य समझकर अपनी शिथिल, असंबद्ध

अरुचिकर, नीरस, असंगत और फीकी काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। इस प्रकार के नक़ालों से विहारी को सुरक्षित रखना प्रकृत प्रयास का मुख्य ध्येय है। ऐसा करने में हमारा इंगित किसी व्यक्ति-विशेष टीकाकार अथवा दोहाकार कवि के प्रति नहीं है, और न हम केवल विहारी के टीकाकारों की प्रगति की आलोचना करने को ही उद्यत हुए हैं। पं० पद्मसिंह शर्मा एवं 'रत्नाकर' को हम विहारी के आदर्श टीकाकार मानते हैं, परंतु उनकी विशद बुद्धि, गांभीर्य और पांडित्य पूर्ण व्याख्या की नक़ल कर दूसरे पद्मसिंह और 'रत्नाकर' कहलाने का ढोंग रचनेवाले मनमौजी और निरक्षर टीकाकारों को हँसना और सुधारना हमारा अधिकार और धर्म है। वास्तव में टीका का यह कुत्सित रूप विहारी के ढाई, तोन दर्जन टीकाकारों में इतना ज़्यादा प्रकट नहीं हुआ है, जितना कि अन्यान्य कवियों की टीकाओं में विशेषतः उर्दू-कवियों के काव्यों की आधुनिक ढंग की 'चटपटी, मसालेदार' टीकाओं में। अतएव साधारणतः यह अनुकरण सभी प्रकार की असंगत (Irrelevant), बेतुकी (Far-fetched), अतिविस्तृत (Prolix) और मनमौजी टीकाओं अथवा व्याख्याओं का है। व्यक्तिगत आक्षेप करना असभ्यता और अविनय की पराकाष्ठा होती है और ऐसे आक्षेपों को साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता। अतएव हमें पूर्ण आशा है कि सहृदय पाठक इस क्षुद्र रचना में व्यक्तिगत आक्षेप ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयास न करेंगे। लेखकों ने केवल हिंदी-साहित्य की साधारण प्रगतियों (General tendencies) को ध्यान में रखकर अनुकरण किया है।

संस्कृत-साहित्यकारों की अनुमति

हम ऊपर कह आए हैं कि अनुकरण-काव्य एक हास्यरस-प्रधान रोचक आलोचनात्मक काव्य है। यों तो यह काव्य-भेद हमारे पुराने रीतिकारों ने स्पष्ट रूप में कहीं गिनाया नहीं है; परंतु इसी प्रकार

उन्होंने और-और असंख्य भेदों को भी नहीं गिनाया। रीतिकारों के ग्रंथों में हम यत्रतत्र ग्रंथारंभ अथवा ग्रंथ-समाप्ति के स्थान पर असंख्य काव्य-भेदों की सूचना पाते हैं, जिनके विषय में उन्होंने नियम बनाना अनावश्यक समझा और जिनमें से प्रत्येक को उन्होंने व्यक्तिगत प्रतिभा पर निर्भर रक्खा है। जिसका प्रमाण यही है कि किसी संगठित रीति के न होते हुए भी आगे चलकर आदर्श अनुकरण-काव्य के कई दृष्टांत, रोचक और श्रेष्ठ पुस्तकाकार में हमें संस्कृत-साहित्य में मिल सकेंगे। यहाँ पर हमारा मंतव्य केवल इतना ही है कि पूर्वकालीन किसी शास्त्र अथवा रीति के अभाव में, तथा तद्-विषयक नामोल्लेख तथा विशेषरूपेण रूपनिर्देश के अभाव में, हमें यह भरोसा है कि काव्य का यह भेद भारतीय शास्त्रकारों द्वारा अनुमत है और हम अपने इस कथन को प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे—

काव्य

"काव्यं रसात्मकं वाक्यम्" (विश्वनाथ) अर्थात् किसी भी रसात्मक वाक्य अथवा वाक्य-समूह को, चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य, हम काव्य-संज्ञा से संबोधित कर सकते हैं।

रस

अब, 'रस' किसे कहते हैं ? विश्वनाथ कवि ने रस की व्याख्या यों की है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा ;
रसतामेति रत्यादि स्थायिभाव सचेतसाम्।

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारीभावादि उपभेदों का आश्रय लेकर चैतन्यशील पुरुषों का, जो हृदयस्थ स्थायिभाव परिपक्वता को प्राप्त होता है, उसे "रस" कहते हैं। आगे चलकर रस के आध्यात्मिक दिव्य स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

रसस्वरूप

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशादेव चिन्मयः ;
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः ;
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।

अर्थात् अंतरात्मा से प्रकाशित होने के कारण यह रस अखंड है—स्वयं प्रकाशमान है—आनंद और चैतन्यस्वरूप है। रसोद्रेक के समय अन्य बाह्य विषय के स्पर्शानुभव से शून्य और ब्रह्मानंद के सदृश अनुभववाला है। अलौकिक चित्तविकासजन्य चमत्कार ही इसके प्राण हैं, और इसका अनुभव केवल कई एक प्रतिभासंपन्न हृदयों में होता है। स्वाकारवत् होने के कारण यह रस एक ही बार अकेला अनुभव किया जाता है।

आगे चलकर ज्ञानतादात्म्य के द्वारा साहित्यकार ने इस रस का स्वप्रकाशत्व और अखंडत्व भी सिद्ध किया है।

यह तो हुआ रस का स्वरूप-वर्णन। रस नव प्रकार के होते हैं—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ;
जुगुप्साविस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च ।

प्रकृत विषयांतर्गत आए हुए हास-रस का निरूपण करते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—"वागादि वैकृताच्चेतो विकासो हास इष्यते" अर्थात् वचनादि विकृति-जन्य चित्त के विकास को हास कहते हैं। "वागादि वैकृतात्" में सभी प्रकार के (नोट—अनुकरण भी एक प्रकार की विकृति है) अनुकरण व्याप्त हैं, यथा—शब्द-विकृति = शब्दानुकरण ; भावविकृति = भावानुकरण और शैली-विकृति = शैल्यानुकरण।

आगे चलकर रसांगों का विवेचन करते हुए रीतिकार हास-रस की

उत्पत्ति, विकास और परिपूर्ति के क्रमशः ये लक्षण बताता है, जिनका यथा-स्थान प्रयोग कर हम अनुकरण-काव्य (Parody) को हास्य-रस-प्रधान एक नूतन काव्यांग प्रमाणित करेंगे—

विकृताकारवाग्वेशचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ;
हासो हास्यस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः ।
विकृताकारवाक्चेष्टं यदालोक्य हसेज्जनः ;
तदत्रालम्बनं प्राहुः तच्चेष्टाद्दीपनं मतम् ।
अनुभावोऽक्षिसङ्कोचवदनस्मेरतादिकः ;
निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।

अर्थात् विकृत (१) आकार, (२) वाणी, (३) वेश और (४) चेष्टा, इनके तादृश्य अर्थात् अनुकरण से (कुहकात्) हास-रस उत्पन्न होता है । (श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार के काव्यों तथा गद्य और पद्य दोनों शैलियों में यह हास-रस प्रदर्शित हो सकता है—यह टीकाकार का मत है) जिसके अंग इस प्रकार प्रतिपादित किए जाते हैं—

स्थायि-भाव* हास है । विभाव† के दो भेद हैं—आलंबन और उद्दीपन । जिस वस्तु अथवा विकृताकारवाग्वेशचेष्टा-जनक भाव को देखकर देखनेवाले के मन में तादृश्यानुकरण करने की प्रेरणा हो, उस वस्तु अथवा भाव को इस रस का आलंबन‡ कहते हैं और कार्य रूप उस

---

* निर्विकारात्मके चित्ते भावःप्रथम विक्रिया—सा० द० प० ३ श्लो० १२६ ।

† रत्याद्युद्बोधकालाके विभावा काव्य नाट्ययोः—सा० द० प० ३ श्लो० ६१

‡ आलम्बन नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्—सं० द० प० ३ श्लो० ६३ ।

चेष्टा को उद्दीपन* कहते हैं। ("चेष्टा" के इस अर्थ के लिये देखो, दृष्टांत यथा—मनु-१-५२" यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्") आँखों का संकोच, वदन अथवा मुख-मंडल पर हँसी के विकास इत्यादि विकारों (Expressions) को अनुभाव† कहते हैं। और निद्रा, आलस्य, अवहित्था‡ इत्यादि व्यापार व्यभिचारी¶ भाव हैं।

अब यदि प्रयोगात्मक (Practical application) सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो "विकृताकारवाग्वेशचेष्टादे कुहकात्" इस चरण में हमारे पूर्व-निर्दिष्ट अनुकरण-काव्य (Parody) के तीनों भेद ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं। यथा—भाव के 'वेश' अर्थात् शब्द—उसके विकार-जन्य तादृश्यानुकरण (कुहुकात्) को हमने शब्दानुकरण-प्रधान हास्य-रस-गर्भित काव्य (Verbal Parody) कहा है।

भाव के 'आकार' अर्थात् भावार्थ अथवा भावाशय (Sense) उसके विकार-जन्य तादृश्यानुकरण को भावानुकरण-प्रधान हास्य-गर्भित काव्य (Sense-Rendering Parody) कहा है।

और भाव के "वाक्" अर्थात् शैली-उसके विकार-जन्य तादृश्या-

---

* उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये—सा० द० प० ३ श्लो० १६०।

† उद्बुद्धकारणै स्वै स्वै, बहिर्भावं प्रकाशयन्;
लोके यः कार्यरूपः सो अनुभाव काव्यनाट्ययो।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६२

‡ किसी आंतरिक भाव के गोपन व्यापार को अवहित्था कहते हैं।

¶ विशेषादाभिमुख्येन, चरन्तो व्यभिचारिणः;
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः त्रयस्त्रिंशच्चतद्भिदा।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६८

नुकरण को शैल्यानुकरण-प्रधान हास्य-गर्भित काव्य (Style Parody) कहा है।

रतिरानी के विषय में शास्त्र-प्रयोग

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, प्रकृत पुस्तक रतिरानी एक हास्य-गर्भित भावानुकरण-प्रधान काव्य है। केवल भाव के आकार का विकृतानुकरण इसमें किया गया है और वह भी दो पृथक् ढगों से। एक उपहास-मूलक अनुकरण (Ridicule) और दूसरा प्रशंसा-मूलक अनुकरण (Applause) कविवर विहारी के असंख्य अनुकरणकर्ताओं के भावों के आकार (Sense) का अनुकरण [(अतएव, आंशिक रूप में स्वयं कविवर विहारीलाल के भावों का भी ; क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि Things which are equal to the same are equal to one another) एक साधारण (Common) वस्तु से बराबरी का संबंध रखनेवाली सब वस्तुएँ आपस में भी बराबर होती हैं)] विहारी के प्रति श्रद्धा के भाव से प्रेरित होकर, उनकी विशुद्ध यशप्रख्याति के हेतु किया गया है। इसी प्रकार विहारी के टीकाकारों का तथा आधुनिक समय के अन्य रंगीले टीकाकारों का अनुकरण, साधारणतः कुत्सिक टीकाकारों के प्रति अविश्वास और उपहास का भाव रखते हुए किया गया है। ऐसा करके लेखकों ने प्रयोग-रूप में अनुकरण-काव्य की रचना के उपहास-मूलक और प्रशंसामूलक, रोचक, आलोचनात्मक दोनों आदर्श दिखला देने की चेष्टा की है।

रतिरानी और रस-विवेचन

अब प्रश्न यह होता है कि रतिरानी के, अंतर्गत अनुकरण के द्वारा हास्यरस का सांगोपांग उत्पादित होना सिद्ध होता है अथवा नहीं ? जिसके प्रमाण ये हैं—

हासरस इस पुस्तक का स्थायिभाव है। "निर्विकारात्मके चित्ते

भाव प्रथम विक्रिया" यह तब प्रमाणित हो जायगा, जब सहृदय पाठक विहारी के कई एक दोहों को, जो भूमिका के उत्तर-भाग में उद्धृत हैं, रतिरानी के अनुकरण दोहों से मिलाकर पढ़ते हुए विहारी के अनुकरणकर्ता दोहाकारों की रचनाओं का ध्यान करेंगे। अनुकरण-कर्ताओं की अनधिकारचेष्टाजन्य कुत्सित कृतियाँ ही इस रस का आलंबन विभाव है। उनकी अनधिकार चेष्टा के द्वारा इस रस का उद्दीपन होता है; उनके काव्यांगों की अंग-विकृतियों का कार्यरूप में बहिर्प्रकाशन ही अनुभाव है, तथा उनके काव्यों में जगह-जगह पर जो बंधशैथिल्य, विफल-प्रयासिता, छद्म तथा अगोप्य गोपनीय झलकते हैं, वही व्यभिचारी भाव हैं। और उन सब रसांगों का तादृश्यानुकरण उसी विकृत रूप में अथवा अति-शय विकृत रूप में रतिरानी में जान-बूझकर प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है।

हम विशेष अन्वेषणीय बातें पाठकों के तत्त्वान्वेषी हृदयों पर छोड़ते हैं।

अनुकरण और मानव-प्रकृति

अब विस्तृत संस्कृत-साहित्यार्णव में से उद्धृत करके हमारे सहृदय पाठकों के समक्ष हम कई एक उच्च कोटि के सर्वांगपूर्ण आदर्श अनुक-रण-काव्यरत्न उपस्थित करेंगे। हमें आशा है कि इन दृष्टांतों पर मनन करने के उपरांत सहृदय पाठकों की धारणा अकाट्य दृढ़ता को प्राप्त होगी और वे यह बात निश्चित जान लेंगे कि अनजान में ही सही, अथवा जानते-बूझते हुए ही (हम तो यही कहेंगे कि जान-बूझ-कर) हमारे पुरातन साहित्य-महारथी और कवि, अनुकरण करनेवाले प्राकृतिक प्रलोभन का लोभ संवरण न कर सके। यदि उन्होंने अन-जान में उच्च कोटि के अनुकरण-काव्य-ग्रंथ रचे; तब तो हमारा यह कथन कि हास्यरसप्रधान अनुकरण-काव्य एक उच्च कोटि का काव्यप्रभेद

है, तथा अनुकरणवृत्ति का मानव-शरीर और मस्तिष्क के साथ प्राकृतिक धर्म का संबंध है, (इस विषय में देखो, "*Origin of Species*"—Charles Darwin) और सम्यक्‌रूपेण पुष्ट हो जायगा। हम अपने सांसारिक व्यापारों का निरीक्षण करते हुए अनादि काल से देखते आए हैं कि जिस मानव-शरीर अथवा मस्तिष्क-संबंधी व्यापार को, नियम द्वारा वर्जित अथवा अननुमत होने पर भी, हानि-लाभ का कुछ विचार न कर, साधारण मनुष्य-समाज सदा से संपादन करने में प्रवृत्त होता आया है और प्रवृत्त रहेगा; उसे मनुष्य का प्राकृतिक धर्म (Instinct) कहते हैं। परंतु उसका प्रतिरोध अथवा मूलोच्छेदन करना हानि-लाभ-विमर्षक मानव-विचार-शक्ति (Reason) के लिये सर्वथा असंभव है। अनुकरण मानव-समाज का अनादिस्थायी प्राकृतिक गुण है ; अतएव अनुकरण-काव्य भी मानव-प्रतिभा का प्राकृतिक सुश्लाघ्य विभूषण है।

संस्कृत-साहित्य के इतिहास का परिशीलन करनेवाले प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को एक नहीं अनेक अनुकरण-काव्यों के दृष्टांत और इंगित उपलब्ध हो सकते हैं। हम यहाँ केवल दो-एक विशिष्ट काव्यों के नामोल्लेख कर, भूमिका-विस्तार के भय से अपने कथन का उपसंहार करेंगे।

भोज-प्रबंध

आदर्श अनुकरणकर्ता कविवर श्रीबल्लालसेन का विश्वविख्यात अनुकरण-काव्य-ग्रंथ 'भोज-प्रबंध' हमारे मत से केवल संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् संसार के समस्त अनुकरण-काव्यों की श्रेणी में उत्कृष्ट है। इसमें अतिशयोक्ति समझना भूल है। हम सहृदय पाठकों से पूछते हैं कि यदि यह काव्य आदर्श अनुकरण-काव्य के सब भेदों को स्पष्टरूपेण दृष्टांतान्वित नहीं करता, तो वे ही बतावें कि शास्त्रानुमत काव्य के और कौन-से प्रभेद के अंतर्गत यह पड़ता है।

हमारी समझ में इसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि भोज-प्रबंध, शास्त्र द्वारा अनुमत, परंतु शास्त्र-ग्रंथों में नामोल्लेख के अभाव के कारण अस्पष्टानुमत, हास्यप्रधान अनुकरण-काव्य है।

इतिहासकार भोजराज को मालव अर्थात् धार देश का राजा बताते हैं। इनका जीवनकाल भिन्न-भिन्न मतों द्वारा १०वीं शताब्दी के अंत में अथवा ११वीं शताब्दी के प्रारंभ में माना गया है। इनकी राजसभा में भोज-प्रबंध में वर्णित, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, बाण, मयूर इत्यादि, प्रायः सभी संस्कृत-साहित्य के उच्च कोटि के कवि, नाटककार और उपन्यासकारों का समकालीन विद्यमान होना सूचित होता है जो इतिहास की दृष्टि से असंभाव्य बात है। यह बात निश्चित है कि न तो वे सब कवि एकत्र समस्थायी और समकालीन ही थे और न उनकी वे कविताएँ, वे समस्यापूर्तियाँ अथवा कवियों की सरस्वती के आगे काव्य-परीक्षावाली वे बातें ही सत्य मानी जा सकती हैं।

वास्तव में बात यह थी कि श्रीबल्लाल कवि भोजराज-नामक किसी इतिहास-प्रसिद्ध काव्यानुरागी मालवदेश के राजा के दरबार में प्रतिभा-संपन्न कवि थे। राजा की अनुमति से अथवा स्वभाव-प्रेरणा से, तथा भोजराज की ख्याति उत्पादन करने के हेतु श्रीबल्लाल कवि ने संस्कृत-साहित्य का यह काव्यरत्न बनाया, जो आज तक काव्यालोचना के जगत् में सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। ऐसे तो संस्कृत-साहित्य में और भी कई आलोचनात्मक ग्रंथ हैं, परंतु रोचकता, मनोहारिता और लोकप्रियता की दृष्टि से भोज-प्रबंध ही एक ऐसा ग्रंथ है, जो पंच-तंत्र, हितोपदेश और कथा-सरित्सागर के समान संसार-भर में संस्कृत-साहित्य के समुज्ज्वल विराट्-स्वरूप को लघु प्रतिमा के रूप में प्रदर्शित कर सका है। संस्कृत-साहित्य में विशेष गति न रखनेवाले हमारे

लाखों भारतीय भाई थोड़ी-सी प्रारंभिक संस्कृत-शिक्षा के बाद भोज-प्रबंध ही को पढ़कर हमारे भारतीय काव्य-जीवन के निर्माताओं के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं, तथा उनके गुणों के तारतम्य का कुछ भाव बाँध सकते हैं। और, इसी भोज-प्रबंध के विषय में हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि यह संस्कृत-कवि-प्रख्यापनार्थं हास्य-प्रधान, एक अद्वितीय अनुकरण काव्य है। भोज-प्रबंध में अनुकरण-काव्य के तीनों प्रकार के रूप यत्र-तत्र वांछनीय अवस्था में मिलते हैं। सहृदय पाठक स्वयं पढ़कर देख लें।

यदि अन्वेषण किया जाय, तो और भी अनुकरण रचनाएँ हमारे बृहत् संस्कृत-साहित्यार्णव में मिल सकती हैं, परंतु वे केवल इंगित-मात्र होंगी और उनसे हमको विशेष प्रयोजन भी नहीं है।

पाठकवर्ग, ऊपर हम कह आए हैं कि अनुकरण करना अथवा भावापहरण करना कोई बड़ा दोष नहीं है—यदि वह ढंग से किया जाय। हम यह भी मानने को तैयार हैं कि स्वयं विहारी भी अनुकरणशील-प्रकृतिसिद्ध लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे और न उन्होंने किया ही। परंतु, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं और फिर भी कहते हैं, भद्दे अनुकरण और सहज ही में बुरी तरह से चोरी के दोष में पकड़े जा सकनेवाले भावापहरण और अनुकरण के बिपक्ष में सब कोई विचारशील पुरुष नाक-भौं सिकोड़ेंगे। अब देखिए दो भिन्न-भिन्न उदाहरण देकर आपके मननार्थ यही बात पेश की जाती है—

कबीर के निम्न-लिखित दो दोहों को ही लीजिए—

(१) कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास ;
नैना ही अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास।

(२) यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात ;
अपने जिय से जानिए, मेरे हिय की बात।

विहारी को इनका भाव हृदय में चुभ गया। प्रतिभा की स्फूर्ति और स्वतंत्र रूप में जागृति उनके हृदय में हुई और उन्होंने उसका यों परिवर्तन कर डाला—

(१) कहा भयो जो बीछुरे, मोमन तोमन साथ;
उड़ी जात कितहूँ गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ
(२) कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेश लजात;
कहिहैं सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।

माना कि भावापहरण हुआ, परंतु साथ ही यह प्रश्न होता है कि इस अपहरण से साहित्य की क्या हानि हुई। कबीर के दोहे पूरे सोलह आने थे, परंतु विहारी ने साहित्य की सच्ची हित-कामना करते हुए उनको अठारह आने बनाने का प्रयास किया और सफल भी हुए। विहारी चाहते तो इसी समय में और इतने ही प्रयास से दो स्वतंत्र सुंदरतर दोहे बना सकते थे, परंतु नहीं, इन दोहों ने उनके हृदय में स्थान कर लिया था। वे इनका बहिष्कार कदापि नहीं क सकते थे। परिणाम यह है कि हम अपनी-अपनी जगह कबीर और विहारी दोनों की रचना का आदर करते हैं।

परंतु इसके विपरीत उसी तुलनात्मक दृष्टि से इस ओर देखिए— विहारी का एक दोहा है—

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं;
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं।

मतिरामजी को यह पसंद आ गया और इसे अपनाकर थोड़े से हेर-फेर के उपरांत उन्होंने यों उस पर अपनी छाप जड़ दी—

मानत लाज लगाम नहिं, नेकु न गहत मरोर;
होत लाल लखि बाल के, दृग-तुरंग मुँहजोर।

वही लाज की लगाम और वही दृग-तुरंग। केवल 'बाल' 'लाल' के जाल में फँसाकर कवि ने पराए माल को हड़पने की चेष्टा की।

बताइए, साहित्य का क्या लाभ हुआ। एक ही दोहे को घसीटकर मतिराम ने उसकी क़ीमत १६ से १२ आने कर दी। इससे तो यदि वे एक मौलिक दोहा लिखते, तो उनके भक्त लोग उस १२ आने माल को भी १६ आने में ख़रीद लेते। परंतु विहारी की उपेक्षा करके जब उन्होंने एक ही बाज़ार में एक ही चीज़ की सामने-सामने दूकान लगाई, तब तो क़लई खुल गई।

पाठको, हम विहारी की तुलना में मतिराम को नहीं रखते, न उनके कवित्व के प्रति हमारी श्रद्धा ही का अभाव है। हम विहारी को विहारी की जगह और मतिराम को मतिराम की जगह सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। कई बातों में हम मतिराम को विहारी से बढ़कर और बहुत-सी बातों में विहारी को मतिराम से बढ़कर समझते हैं। केवल उपयुक्त मति के व्यामोह के लिये हम उनको अवश्य कुछ कह सकते हैं। फिर एक मतिराम ही को उद्धृत करने से हमारा आशय केवल उन्हीं को विहारी के अनुकरणकर्ता अथवा सबसे बड़े अनुकरणकर्ता मान लेने का नहीं है। हमने केवल उदाहरण-मात्र के लिये मतिराम का दोहा उसी प्रकार ले लिया है, जिस प्रकार १०० मन धान में से मुट्ठी-भर चावल। सत्य तो यह है कि विहारी के उत्तरकालवर्त्ती प्रायः सभी दोहाकार कवियों ने विहारी के दोहों का अनुकरण कर उनकी-सी उज्ज्वल ख्याति लाभ करने की चेष्टा की। आज तक यह अनुकरण का प्रवाह अनवरत चला जा रहा है। यहाँ तक कि ये अनुकरणकर्ता दोहा-कवि आजकल तो बरसाती मेढकों की तरह जिधर देखो उधर ही टर-टर करते सुनाई देते हैं। उनकी विरक्ति के हेतु और विहारी की स्तुति और प्रख्याति के हेतु यह प्रयास है। यही इस अनुकरण-काव्य का मंतव्य है। उदाहरण के लिये तथा मनोरंजनार्थ हम नीचे कई एक रतिरानी के दोहे विहारी के दोहों के निकट रखकर अपना उपहास्य मंतव्य प्रकट कर देते हैं।

यथा—

(१)

विहारी—हेरि हिंडोरैं गगन तैं परीपरी सी टूटि;
धरी धाइ पिय बीच हीं, करी खरी रस लूटि।

रतिरानी—सावन में झूलो परो, सखि सँग तिय झुलराय;
आय बीच प्रकटे पिया, 'मरी' कहत लपटाय।

(२)

विहारी—कुच गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुँहचाइ;
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाढ़।

रतिरानी—कुच पर्वत छवि छकत ही, पर्यो पेट के गाढ़;
वामें मो मन फँसि रह्यो, सकत न कोऊ काढ़।

(३)

विहारी—खेलन सिखए अलि भलैं, चतुर अहेरी मार;
काननचारी नैन-मृग, नागर नरनु शिकार।

रतिरानी—कर गहि बान कमान, नैना कानन जात हैं;
कैसे बचि हैं प्रान, मृग बनि मारत मृगन को।

(४)

विहारी—सहज सचिक्कन स्यामरुचि, सुचि सुगंध सुकुमार;
गनतु न मनु पथु अपथु लखि, विथुरे सुथरे बार।

रतिरानी—कारे सटकारे चिकन, झीन सुकोमल बाल;
रेशम-रसरी-जाल मनु, मन-खग फाँसन लाल।

(५)

विहारी—ज्यों-ज्यों जोबन-जेठ दिन, कुच मिति अति अधिकाति;
त्यों-त्यों छिन-छिन कटि-छपा, छीन परति नित जाति।

रतिरानी—कच कपोल कँह बढ़त लखि, बढ़े नितँव कुच नैन;
कटी छीन भइ जात है, मैनाहिं नाहीं चैन।

(६)

विहारी—लाज गहौं बेकाज कत, घेरि रहे घर जाँहिं ;
गोरसु चाहत फिरत हौं, गोरसु चाहत नाँहिं ।

रतिरानी—हरी हरन में चतुर हैं, हरैं सबन की पीर ;
माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चीर ।

(७)

विहारी—बिनती रति विपरीत की, करी परसि पिय पाइ ;
हँसि अनबोलैं ही दियौ, ऊतरु दियौ बताइ ।

रतिरानी—एक दिना पिय ने कही, करन केलि विपरीत ;
नतमुख ह्वै विहँसी प्रिया, नयनन में भय प्रीत ।

इस अति विस्तृत भूमिका का उपसंहार करते हुए और सहृदय पाठकों से क्षमा-प्रार्थना करते हुए हम आशा करते हैं कि वे हमारे आशय पर और इस विनय पर कि

आपहि को अपराध , न्यायालय में आपके ;
पुरवहु मोरी साध , सच्चो सच्चो न्याय करि ।

पूर्णरूपेण ध्यान देकर हमारे प्रयास पर खूब दिल खोलकर हँसेंगे । बस उसी हँसी के सप्तरंगरंजित पुण्य-प्रकाश में यदि विहारीलाल उनके और हमारे विशुद्ध हृदयासनों पर आ विराजें, तब तो उनकी वह कामना और हमारी और सहृदय पाठकों की यह मनोभिलाष पूर्ण हो जाय—

सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल ;
यहि बानक मो मन बसौ , सदा बिहारीलाल ।

विषय-सूची

रति-रानी

चतुर चोर

हरी हरन में चतुर हैं, हरैं सबन की पीर ;
माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चीर ।

व्रजबिहारी बड़े बाँके बटमार हैं । चोरी करने में भी वह बड़े चतुर हैं । वह चोरी तो करते हैं एक वस्तु की; परंतु पीछे खिंच आती है एकआध और ही चीज़ ! वह हरन तो करते हैं माखन का; परंतु गोरस अपने-आप चला आता है । हमें आश्चर्य तो यह है कि माखन-चाखन के पश्चात् उन्हें गोरस की लौ क्यों लगी रहती है ? मालूम होता है, यहाँ गोरस का कुछ अर्थ ही और है । कवि के इस श्लेष का अर्थ प्रवीण पाठक स्वयं ही समझ लें । यदि गोपाल पहले ही गोपियों के गोरस का हरन कर लेते होंगे, तो उन्हें माखन तो मुफ़्त ही मिल जाता होगा ।

अब ज़रा एक और चोरी की चासनी चखिए । जल-विहार करती हुई मानिनी गोपियों के वस्त्र चुराकर ही हमारे हरी उनका मान हर लेते हैं । मान को पानी के प्रवाह के साथ बहा-कर वे हमारे बिहारीलाल से, वस्त्र वापस लौटा देने की,

विनय करने लगती हैं। परंतु कृष्ण केवल इसे ही पर्याप्त नहीं समझते। वह उनको अपने पास नग्न बुलाकर उनके मान को पूर्णतया चूर्ण कर देते हैं, जिससे वे आगे सँभलकर चलें। अथवा यों कहिए कि वह राधाजी का मान हरकर उनका चीर भी हरने लग जाते हैं, ऐसे वह 'चतुर चोर' समस्त संसार के दुःखों की चोरी करें।

मधुर मुरली

घनी घटा देखन रसिक, गयो जमुन जल पार ;
राधातारन तान करि, दियो सबहिं जग तार ।

सावन का सुहावना समय है । एक साथ हज़ारों तोपों की आवाज़ के समान गहरी गर्जना हो रही है । मालूम होता है, इंद्रदेव अपनी भार्या भूमि से चिरकाल के बाद मिलने आए हैं; उन्हीं की ख़ुशी में—उनके स्वागतार्थ—यह आनंदोत्सव मनाया जा रहा है । थोड़ी देर में पानी बरसना ही चाहता है ।

इधर तो यह हाल है, और उधर बेचारी विरहिनियों की वेदना का कुछ वारापार नहीं । उनका तो "बदाबादी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह" । परंतु साँवले के लिये तो संयोग-सुख का पूरा-पूरा सामान जुटा है, सिर्फ़ शर्म ही की शिकायत है । आपने एक तरकीब ढूँढ निकाली । घटा की छटा देखने का नाम लेकर आप यमुना के उस पार गए और मीठे सुर में मुरली बजाने लगे । राधा-तारन, तारनतरन कृष्ण ने यह तान अपनी प्रेयसी राधाजी को यमुना के उस पार, अपने पास, बुलाने के लिये की । आपने कोई सांकेतिक स्वर सुनाया होगा ।

संसार को इस आनंद से वंचित रखकर आप अकेले ही राधाजी के साथ मज़ा लूटना चाहते थे और इसी लिये 'राधा-तारन' अर्थात् राधाजी को तैराने के लिये तान की ! परंतु नतीजा कुछ और ही हुआ । तान को सुनकर राधाजी तो लज्जावश यमुना न तैर सकीं, परंतु समस्त संसार के प्राणी इस भवसागर को—तैर गए—सहज ही में पार कर गए ! धन्य, 'राधा-तारन' ! आप तैराना तो चाहते हो किसी और को और तैर जाता है कोई और ही । हे माधव ! यह मज़ा तुम्हारी मधुर मुरली को छोड़कर और कहाँ ?

इस संसार में आकर वही तरा है, जिसने राधावल्लभ की मुरली की तान के रहस्य को समझ लिया, जो उसके सुमधुर संगीत को घोलकर पी गया है, और जो निशिदिन बस उसी एक प्रेम-रंग में मग्न रहता है । बिहारी ने सत्य कहा है—

तंत्रीनाद कवित्त-रस, सरस राग रति रंग ;
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ।

आनंददायी अच्युत

गोपिन के मन हरन करि, पियो अधर मकरंद ;
नव वय सुंदर स्याम वपु, काहि न करत अनंद ।

रसिक-शिरोमणि, साँवले नंदलाल ने तो अपनी लीलाओं द्वारा समस्त भक्त-मंडल को वश में कर रक्खा है। भक्तों ने उनको अपने हृदय में स्थान दिया है; और उनके चरणों से ऐसे लिपट गए हैं कि उनकी दीनता देखकर भक्त-वत्सल भगवान् से उनको छोड़ते नहीं बनता । परंतु, यह न समझिए कि कृष्ण जैसे नीतिज्ञ, सबकी चाल में आकर इसी प्रकार प्रेम-बंदी बन जाते हैं। नहीं-नहीं, यह तो अटल और अनन्य भक्ति ही की शक्ति है कि जिसके वश होकर वे लाचार हो जाते हैं। ऐसी कोटि के भक्तों के तो वे सर्वस्व, जीवन-प्राण हो रहते हैं; भक्तों में वे इस प्रकार मिल जाते हैं कि वे भक्त और भक्त वे हो जाते हैं, परंतु सबको यह अनन्य भक्ति दुर्लभ है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि केवल इसी कोटि के भक्त उनको प्रिय हैं। नहीं, उन्होंने तो "भक्तिमान् मे प्रियो नरः" कहकर स्पष्ट कर दिया है कि भक्त किसी कोटि का क्यों न हो, वे उसको अवश्य अपनाते हैं। हाँ, इतना जरूर है कि जिनकी भक्ति अनन्यता और प्रबलता

में बढ़ी-चढ़ी है, वे तो उन पर दावे के साथ अधिकार रखते हैं। परंतु भगवान् सबके हैं। कोई उनको रासलीला के रसिक रूप में देखकर आनंद पाते हैं, तो कोई उन्हें गोपियों के साथ प्रेम करते देखकर प्रेम करते हैं; कोई उन्हें गोपाल रूप में प्यार करते हैं, तो कोई उन्हें दीन-दुख भंजन अर्जुन-सखा रूप में देखना पसंद करते हैं। सारांश यह है कि इन सबको भगवान् आनंददायी हैं।

परंतु इन कविजी की ओर तो देखिए, इन्होंने अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाकर कृष्णजी को तृप्त करना चाहा है। ये उन्हें और ही रूप में प्यार करते हैं। इनका तो कहना है कि जिन छैला कृष्ण ने गोपियों के मन हरन कर लिए थे, और जिन्होंने उनके अधरामृत का पान किया था, उन्हीं कांतिमान्, किशोर और सुंदर, श्याम शरीरवाले कृष्णकन्हाई को हम अपना प्रेम अर्पित करते हैं। कविजी का कथन सत्य है। मालूम होता है, कवि अधरामृत के बड़े ही शौक़ीन थे, तभी तो इस रूप में उनके आगे अपना प्रेम प्रकट किया है। परंतु कविजी ने यह गारंटी नहीं दे दी है कि सभी को यह रूप सर्वोत्कृष्ट जँचे। यहाँ तो जितने रसिक हैं, उतनी ही रुचियाँ हैं। बिहारी उनको 'कर मुरली उर माल' देखना चाहते हैं; कोई-कोई उनको बहुरंगी रूप में, तो कोई 'तिरछे चरण धरे' रूप में देखना चाहते हैं। धन्य हो गोपाल, आपकी लीला पर सब लट्टू हैं।

मुक्त मंदाकिनी

मुक्ता भरि तिय माँग इमि, सोहत बिच कच पास ;
मनु नीलोज्वल नभ विषे, छलकत गंग-अकास ।

मोतियों से भरी हुई नायिका की माँग केश-पास के बीच में इस प्रकार शोभा देती है, मानो नीले और चमकीले आकाश में आकाश-गंगा छलक रही हो ।

ये कवि भी गजब के लोग होते हैं । ये प्रकृति-देवी के लाड़िले लड़कों में से हैं । इनका कुछ ढंग ही निराला है। इनको सुमन में सुंदरी के दर्शन होते हैं; ओस में मोती नज़र आते हैं; महिला के मुख में मयंक के दर्शन होते है; लटों में नागिन नज़र आती हैं; दाँतों में दाड़िम के दाने दीख पड़ते हैं; कटि में केहरि की कटि दिखलाई पड़ती है; मेंहदी लगे हुए करों में कलईदार काँच दीख पड़ता है, और मोतियों से भरी हुई माँग में मंदाकिनी मिलती है ।

ये कवि प्रकृति-माता के सच्चे सुपुत्र हैं, इसलिये इन्हें हर जगह ही प्राकृतिक सौंदर्य दीख पड़ता है । मंदाकिनी के समझ लो, भाग्य खुल गए—वह तो मुक्त हो गई ! कविजी की कृपा से उसे ऐसा स्थान मिल गया है कि जिसे त्यागने

की शायद ही कभी उसकी तबियत करे; क्योंकि उस नभ का तो चंद्र कलंकी है, परंतु नायिका का मुख निष्कलंक चंद्र है, जिसकी चाँदनी हमेशा छिटकी रहती है। बेनी-रूपी नागिन रक्षा के लिये नियत हुई है, जो सदा पहरा देती है। मेह-आँधी का भी यहाँ डर नहीं है। अतः यह सब प्रकार से यहाँ सुखी है।

नेह-नद

सिंदुर माँग सँवारि तिय, उमड़ि-उमड़ि इठलात ;
मानहु नागर नेहनद, सागर हू न समात ।

सिंदूर से अपनी माँग भरके वह स्त्री इतनी इठला-इठलाकर क्या चलती है, मानो यह दिखाती है कि पति-प्रेम की नदी का प्रवाह समुद्र में भी न समाकर इधर-उधर वह निकला हो।

माँग में भरा हुआ सिंदूर ही मानो पति-प्रेम-प्रवाहिनी का वह भाग है, जो हृदय-सागर में भी न समाकर बह चला हो। जो पति-प्रेम में पगी हुई हैं अथवा उससे परिचित हैं, वे इस बात की ताईद करेंगी कि वास्तव में यह प्रेम-रूपी नदी समुद्र में नहीं समा सकती—समुद्र में ही क्या तीनों लोकों में भी नहीं समा सकती। फिर बेचारी नायिका इठला-इठलाकर चले, तो क्या आश्चर्य है ! नेह-नद में बहुत-से तो बह तक जाते हैं। नेह-नद की भला क्या हद !

मकड़ी और मक्खी

कामिनि केस कलाप सिर, मकड़ी को सो जाल ;
मन माछी तँह फँसि रही, कढ़त न होत विहाल ।

मकड़ी का जाल तो आपने देखा ही होगा; कैसा सुंदर होता है ! कारीगरी को देखकर तो दिमाग़ चक्कर खाने लगता है। फिर कभी सूर्य की किरणें पड़ गईं, तब तो ऐसा चमकने लगता है कि देखनेवालों की आँखों में चकाचौंधी आ जाती हैं। ज़रा दृष्टि स्थिर कर एक-एक सूत पर नज़र डालिए और सोचिए कि उनके बुननेवाले को ईश्वर ने क्या हथौटी दी होगी ? स्पर्धाशील जुलाहों की लाखों पीढ़ी गुज़र गई, परंतु इसकी नक़ल न हो सकी। आपने सब कुछ देख लिया। अब साथ ही यह जानने को भी उत्सुक होंगे कि इस जाल का उद्देश्य भी कैसा महान् और अद्वितीय है। परंतु, यहाँ आकर, आपको हताश होना पड़ेगा। देखिए, एक कोने में दुबकी हुई वह बेडौल मकड़ी ही इस सौंदर्य और कारीगरी के नमूने की स्वामिनी है। और, इस जाल के बिछाने का उद्देश्य यह है कि इधर से गुजरनेवाली भोली-भाली मक्खियाँ धोखा देकर फँसाई जायँ। देखा, कितना बड़ा पहाड़ खोदने पर एक छोटा मूसा निकला।

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का ;
जो चीरा तो एक क़तरए ख़ूं न निकला।"

अब भी ध्यान रखिए, किसी भड़कीली चीज़ को देखकर उसके मोह में मत पड़ जाइए !

और सुनिए। कविजी की प्रतिभा ने भी इस प्रकार की एक कपटमय वस्तु स्त्री के छवि-संसार में ढूँढ़ निकाली है। स्त्रियों के केशपाश मकड़ी के जाल के सदृश ही चमकीले और भड़कीले होते हैं; उन पर पड़ी हुई सूर्य की किरणों की चमक भी आँखों की सहन-शक्ति से बाहर है; उनका भी उद्देश्य किसी प्रकार भला नहीं है। विधि ने इस केशपाश को ऐसा सुंदर और नयनानंददायी बनाया है कि जिसने एक बार मन भर-कर इसकी छवि को देख लिया, वह फँस गया, और उसका निकलना मुश्किल हो गया। वहाँ तो मकड़ी के जाल में केवल मक्खी-जैसे क्षुद्र जंतु ही फँसते हैं; और अगर बड़ा जीव आ पड़े, तो जाल के टूटने की नौबत आती है; परंतु यहाँ तो ऐसा बड़ा भारी जीव फँसता है, जिसकी सामर्थ्य का धौंसा दूर-दूर तक बजता है; चंचलता में, जो हवा से भी बढ़कर है; बल-वान् जो इतना है कि विपत्ति पड़ने पर पहाड़ की तरह अचल रह सकता है; दृढ़प्रतिज्ञ इतना कि एक बार प्रतिज्ञा करने पर करोड़ों बाधाएँ क्यों न आ पड़ें, हिलता तक नहीं; जो सूक्ष्म

इतना है कि ध्यान में भी नहीं आ सकता। परंतु, यह सब होने से क्या हुआ, यहाँ आकर उसकी दाल नहीं गलती। जाल में पड़ते ही देवता कूच कर जाते हैं। एक बार इसमें फँस गया, फिर क्या है ? जन्म-भर यहीं चक्कर लगाता रहता है; बेहाल होता है; परंतु करे क्या ? असहाय है ! निकल नहीं सकता। ग़ज़ब का मामला है; प्रभु बचावें तो रक्षा हो।

रेशम-रसरी

कारे सटकारे चिकन, झीन सुकोमल बाल ;
रेशम रसरी जाल मनु, मनखग फाँसन लाल ।

यह दोहा सौंदर्य और नज़ाकत का नमूना है। कविजी कहते हैं कि नायिका के सिर पर काले, लंबे, चिकने और महीन बालों का यह केशपाश प्रेमियों के मनरूपी पत्ती को फँसाने के लिये रेशम की पतली, कोमल और चिकनी रस्सियों से बना हुआ जाल-सा है।

आप जानते ही हैं कि बहुतेरे चिड़ीमार पत्तियों को फाँसने के लिये जाल फैलाकर बैठते हैं। परंतु उनका तो यह व्यापार साधारण है; इसमें कोई विशेषता नहीं है, जो उल्लेखनीय हो। हाँ, कविजी की सृष्टि में एक नया आविष्कार हुआ है; उन्होंने कड़े परिश्रम के बाद यह मालूम किया है कि स्त्री-रूपी एक बहेलिया अजीब ढंग का जाल बिछाकर उसमें मन-रूपी पत्तियों को फँसाता है। वह कोई ऐसा-वैसा बधिक तो है नहीं, जो आपको उसके जाल का पता लग जाय; उसके जाल की रचना ही विचित्र है। उसके काले-काले, लंबे, घुघराले, चिकने, कोमल और झीने केशों का पाश बिछे हुए जाल के

सदृश है। यह जाल कोमलता, चिकनाहट और झीनेपन से ऐसा प्रतीत होता है, मानो रेशम की बारीक़ रस्सियों से बना हुआ है। क्यों न प्रतीत हो; यह जाल भी किसी ऐसे-वैसे पत्ती के लिये नहीं है। इसमें तो मन-खग फँसाया जायगा, जो इतना नाजुक है कि थोड़ी-सी क्षति से नष्ट हो सकता है। इस जाल की तारीफ़ यह है कि अगर और-और जालों के स्वामियों को अपने-अपने जाल के इर्द-गिर्द छिपकर पक्षियों की ताक में बैठे रहना पड़ता है, तो यहाँ पर बैठ रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जाल को हमेशा के लिये बिछाकर उसकी स्वामिनी नायिका निश्चिंत हो जाती है। फिर तो अपने आप यों ही मन आकर इसमें फँस रहते हैं। उन्हें इस फँसने में ही मजा आता है। आप यह कह सकते हैं कि एक बार फँसने पर आप इस जाल से हनुमानजी की तरह सूक्ष्मरूप धरकर निकल बाहर होंगे, परंतु क्या आप मन से भी सूक्ष्मरूप धर सकते हैं?

बेनी-बिहार

वर बेनी तिय शीश पै, यहै काज दरसाय ;
मणि रच्छा हित नागिनी, मनहु सघन वन माँय।

कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि नायिका के सिर पर यह बेनी ऐसी प्रतीत होती है, मानो नागिनी ने घने वन के किसी एकांत स्थान में अपनी मस्तक की मणि को धर रक्खा हो और फिर उसके इधर-उधर फिरकर उसकी रक्षा करती हो।

वास्तव में उत्प्रेक्षा अनूठी है। नायिका का घने केशपाश से ढका सिर किसी घने वन से ज़्यादा भयोत्पादक है। घने वन में तो कलेजा कड़ा करके कोई घुस भी जा सकता है, परंतु कामिनी के कचपाश की सघनता इस प्रकार की है कि दिमाग़ उसको देखकर ही चक्कर खाने लगता है। और सघन वन भी ऐसा कि जिसमें घोर अंधकार एक ओर से दूसरे छोर तक फैल रहा है—हाथ को हाथ सूझना मुश्किल है। फिर प्रवेश कर इस कानन का सौंदर्य तो निरखा ही कैसे जा सकता है। परंतु दूर से देखने पर एक किनारे पर कोई चमकीली चीज़ देखकर दिल को धैर्य होता है। उसका प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि दूर-दूर तक के स्थान उसके

आलोक से आलोकित हैं। किसी प्रकार गिरते-पड़ते वहाँ पर पहुँचते-पहुँचते यह मालूम होता है कि जिसको और कुछ समझे थे, वह तो एक साँपिन की मणि, किसी पेड़ के सहारे, इस जंगल के एक किनारे, रक्खी है; और उसकी मालकिन, बेनी रूप साँपिन मन-ही-मन उसकी द्युति देखकर हर्षित होती हुई और उसकी रक्षा करती हुई उसके चारों ओर घूमती दिखाई दे रही है। अरे राम ! यह तो बड़ा भ्रम हुआ; यह तो कुछ और का और ही निकला !

कपोल-कल्पना

कत कपोल तिय परसि लट पुनि-पुनि यों उमगात ;
सुनि सुनि कै केली कथा, हर्ष न हिए समात ।

रात को नायक और नायिका के बीच रति-क्रीड़ा तो हो चुकी, परंतु यह न समझिए कि फिर उस केलि-कथा का प्रसंग ही न आया हो। बहुत समय बाद तक इस विषय पर टीका-टिप्पणी होती रही। रात्रि में नायिका के सब अंगों को उस प्रेम-रस के आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त न था। हाँ, कई-कई अंग अत्यंत सौभाग्यशाली थे, तो पास ही कई ऐसे भी भाग्यहीन थे, जो घटनास्थल पर होने पर भी, इस लीला में शामिल होकर मज़ा चखने से महरूम रक्खे गए थे; वे बेचारे बड़े दुखी थे। उनका दुख तो स्वाभाविक ही था। भला किसी रसिक दर्शनाभिलाषी को नाटक के मंडप में ले जाकर और आँखों पर पट्टी बाँधकर छोड़ दिया जाय, तो क्या वह दुखी न होगा? यही हाल था बेचारे उन अंगों का! उस समय तो उनको बड़ा क्रोध आया, परंतु करते क्या? निस्सहाय थे। और उनको निराश करनेवाले भी तो उनके स्वामी—नायक-नायिका ही थे। आख़िर किसके आगे दुखड़ा रोते? उमड़ते हुए

आँसुओं को पी गए। परंतु दृश्य को जानने के लिये रह-रह-कर दिल में आनेवाली उत्सुकता को मन से न मिटा सके।

पाठक! आप यह जानने के लिये उत्सुक होंगे कि इस बड़ी आफ़त में पड़े हुए ये अंग कौन-कौन थे। यह थी नायिका के केश-पाश से लटकी हुई और उसके कपोलों के सहारे, तनछीन मन-मलीन, पड़ी हुई दो लटें। बेचारी इन्हीं दुखियाओं पर आफ़त पड़ी थी। पर "मरता क्या न करता"—इन्होंने भी एक तरक़ीब ढूँढ निकाली; ये कपोलों की शरण में गईं, जो इनके पड़ोस में हो रहते थे। कपोल बड़े सहृदय थे; इनकी इस दशा पर उनको दया आ गई। फिर शरणागत की रक्षा करना परमधर्म समझकर इनका दुःख दूर करना उन्होंने अपना कर्तव्य माना; लटों की इच्छा पूरी की गई—प्यारे दंपति की क्रीड़ा किस प्रकार रही, उसमें कपोलों ने क्या पार्ट खेला इत्यादि सब हाल बताया गया। ये सब बातें कानाफूँसी में कपोलों ने लटों को सुनाई। लटों का दुःख दूर हो गया। वे तो श्रवणानंदरस में मग्न हो गईं, और बार-बार मारे ख़ुशी के लगीं उछलने। भला उनके छोटे-से हृदय में यह आनंद-स्रोत कैसे समाता? सो तो अगर वे यह दृश्य आँखों देख लेतीं, तो न-जाने क्या करतीं!

भौंरों की भीर

अलि कुंजहिं चलि जाति ही, भइ भौंरन की भीर ;
लट लखि आए मोरगन, बिंबाफल लखि कीर ।

नायक-नायिका ने अपने मकान में बड़ों के मौजूद होने के कारण, मिलने का मौक़ा न पाकर, एक तरक़ीब ढूंढ निकाली। नायक ने नैन-सैन करके अपनी प्रिया को सांकेतिक स्थान बता दिया और स्वयं उस तरफ़ चल पड़ा। मालूम होता है यह स्थान कालिंदी-कूल का कोई कदंबकुंज ही था, जहाँ चिरकाल तक इस कामिनी और कांत ने केलि कर के अकथनीय आनंद लूटा होगा। नायिका तुरंत ताड़ गई; और नायक के चले जाने के कुछ समय बाद कुछ बहाना बनाकर उधर रवाना हुई। परंतु बेचारी का रूप-सौंदर्य ही बैरी बन गया। लुटेरों ने अचानक आक्रमण किया। उसके शरीर से निकलती हुई सुवास ने इन डाकुओं को सेंध बता दी। भौंरों को पद्म-पराग का पता मिला, वे भनकार करते हुए चारों ओर से आ जुटे और नायिका पर मँडराने लगे। उधर सर से लटकती हुई लंबी-लंबी लटों को नागिनियाँ समझ-कर उनके स्वभाव-शत्रु मयूर उन्हें मारने दौड़े। अधरों को पके हुए बिंबाफल जानकर कीर लालच को न रोक सके—उनके

मुँह की जगह चोंच से लार टपक पड़ी। एकआध तो नाक का रूप धारण कर नायिका के मुख पर आ ही डटा; परंतु ऊपर बैठे हुए शिकारियों के शरों की शंका से चोंच न चला सका। नायिका यह हाल देखकर हैरान हो गई।

परंतु यह उसके हक़ में अच्छा ही हुआ; क्योंकि इस घेरे में घिर कर वह किसी को दिखाई न दी। वह गुप-चुप नायक के पास जा पहुँची, तब उसने सब पक्षियों को पीट-पाटकर भगा दिया; और उनके स्थान पर स्वयं इन अनुपम रसों का आस्वादन करने लगा। भौंरों से घायल किए हुए गालों के डंकों को चूमकर ठंढ़ा किया; मोरों से सताई हुई सर्पिनियों को अपने हृदय से लिपटाकर शांत किया; और कीरों के चोंच लगा देने के कारण टपकते हुए बिंबाफल के रस को पान किया।

अमृत का आगार

तिय ललाट ते द्रवित ह्वै, रह्यो अधर बिच आय ;
बिन प्रयास ही पीय की, जाते प्यास बुझाय ।

सुधा-सागर से शशि का जन्म हुआ; महादेवजी ने ज़हर की ज्वाला बुझाने के लिये अर्धचंद्र को अमृत-रूप से अपने भाल पर धारण किया; फिर यह अपनी शीतल रश्मियों द्वारा सब संसार में सुधा का सिंचन करता है। यह सुधांशु, सुधाधर, इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। अतः यह निश्चय हुआ कि यह शशि सुधा का स्थान है—अमृत का अपूर्व और अगाध अर्णव है।

स्त्रियों के सुंदर, उज्ज्वल और चमकीले ललाट को चंद्र से उपमा दी जाती है। वह ठीक शिवजी के शिखर पर स्थित शशि के सदृश है। अतएव यह कहना ठीक है कि सुंदर स्त्रियों के ललाट में अमृत का निवास है। उनके ललाट सुधा के समुद्र और अमृत के आगार हैं। परंतु कवि अधरामृत का ही बखान करते हैं और यह बताना भूल जाते हैं कि अधर में अमृत आया, तो आया कहाँ से ? क्या कभी किसी ने इस अधर में रहनेवाले अनुपम अमृत का सच्चा-सच्चा हेतु बताया ? इसका क्या कारण है कि यह सुधा,

सुधांशु-रूप ललाट में न रहकर अधर में ही अटकी हुई है। कविजी ने इस शंका का यों समाधान किया है—अमृत का आधार तो ललित ललनाओं का ललाट ही है; परंतु जैसे सुधाकर अपनी शीतल किरणों को फैलाकर सोम इत्यादि जड़ी-बूटियों को अमृत प्रदान करता है, उसी प्रकार यह ललाट भी अधर को अमृत प्रदान करता है। परंतु इसे क्या पड़ी, जो विना माँगे ही अधर को दान देने दौड़ता है? यह तो इस अनोखे अमृत की ही करामात है कि स्वयं ललाट से द्रवित हो-कर अधर में आ ठहरता है, जिससे कि प्यारे की प्यास विना कुछ प्रयास के ही बुझ जाय। या रति समय पति को प्रेयसी के ललाट तक पहुँचने का कहीं परिश्रम न करना पड़े, यह सोच-कर प्रेमदेव ने अपने पुण्य-प्रकाश के प्रभाव से अमृत को आकर्षित कर के अधर में ला रक्खा है।

कमल की केसर

रतीसमय बेंदी दिए, तिय मुख मो मन भाय ;
लाल कमल विकस्यो मनहु, बीच पराग सुहाय ।

यह एक नायक के मनरूपी कैमरे में खींचा हुआ, रति समय का प्रिया के मुख-पद्म का भाव-चित्र है। लीजिए, इस पर ग़ौर कीजिए और इसके मननानंद में मग्न हो सुख-सागर में ग़ोते लगाइए। दिन का समय है। प्रेम-रूपी पौदे के विकास के लिये वसंत का-सा अवसर है। इधर नायक और नायिका ने प्रेमोन्मत्त हो रति-क्रीडा आरंभ की है, तो उधर उसी समय सरिता-सलिलरूपी सुखद शय्या पर सोती हुई सरोजिनी के साथ सूर्य ने भी क्रीड़ा शुरू की है। अपने-अपने प्रियतम की गोद में खेलती हुई नायिका और पद्मिनी पूर्ण आनंदोल्लास को पा रही हैं। सूर्य-करों के सुखदायी स्पर्श का अनुभव कर कमलिनी ने पूर्ण विकाश पाया है, और नायिका ने नायक के स्पर्श-सुख-जन्य आनंद से एक अनोखी आभा धारण की है। नायिका का चेहरा लालवर्ण हो गया है, तो उधर कमलिनो ने अपनी गर्भस्थ लाली की छटा छिटका दी है। इसी अवसर पर कमलिनी ने संकोच को छोड़ अपने अंदर की पीत-पराग की

सुंदरता इस प्रकार दरसा दी, जिस प्रकार नायिका के सुख चेहरे ने केसर की पीत बेंदी ! जिनको देख-देखकर नायक महोदय और सूर्यदेव के मन-मृग छलाँगें मारने लगे। भला इस प्रकार की दर्शनीय दृश्यावली कविजो के मन में क्यों न चुभेगी; इसकी तो स्मृति ही रसिकों के मन को मुग्ध कर देती है।

शत्रुओं की सज़ा

भ्रू कमान खग मृग लिए, मीन बरौनी जाल ;
कमलनि लगि भौंरा भये, किए सबनि बेहाल।

चारों ओर शत्रुओं की फौज घिर आई। उत्तर से खंजन पक्षियों के झुंड-के-झुंड अपनी चपलता और कटीलेपन को फिर से छीनने के लिये झपटे; पश्चिम से मृगों के समुदाय पवन-वेग से अपने तीखे सींगों को झुकाकर अपने नेत्रविस्तार को वापस लौटाने को लपके; पूर्व से कमलों की क़तार अपने दिल को कड़ा करके, अपनी कोमलता, रंग, स्निग्धता, सौंदर्य इत्यादि सर्वस्व का अपहरण करनेवाले पर आक्रमण करने के लिये पैर न होने पर भी उठ दौड़ी; दक्षिण दिशा से, समुद्र को कभी न छोड़नेवाली मछलियों ने भी अपने आकार और चंचलता की चोरी करनेवाले को दंड देने का इरादा करके अपने वासस्थान को छोड़ा; और चारों ने मिलकर चारों ओर से धावा बोल दिया। परंतु इधर नेत्र भी पहले से ही होशियार थे। उन्होंने जर्मनी की तरह पहले से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी शुरू कर दी थी। अतः ये इस अचानक आक्रमण से तनिक भी भयभीत न हुए, और अपने सिपहसालारों को शत्रुओं

का सामना करने के लिये भेजा । कमांडरइनचीफ़ (Commander-in-chief) भयावने, बाँके वीर भ्रू ने अपनी कमान को तानकर उत्तर और पश्चिम की ओर भयानक बाण-वर्षा करनी प्रारंभ की । हज़ारों की संख्या में मृग और खंजन धराशायी होने लगे। बहुत-से तो डर के मारे ही मर मिटे और जो बाक़ी बचे, वे दुम दबाकर भागे। वीर बरौनी ने अपना जाल फैलाकर दक्षिण से आती हुई मछलियों का मुक़ाबला किया, और सबको फंदे में फँसा लिया । अब बाक़ी बचे कर्महीन कमल, सो उनका बचा-खुचा ख़ज़ाना भी प्रवीण पुतलियों ने भ्रमरों का भेष बनाकर लूट लिया, और उनको डरा-धमकाकर यों ही धत्ता बता दिया । तीनों वीरों ने अपना-अपना काम कर दिखाया, और अपने सर्वगुण-संपन्न स्वामी से सम्मान पाया । शत्रुओं को सच्ची सज़ा मिली ।

रूप-नगर के राजद्वार

पुतरी प्रहरी, पलक पट, बलम बरौंनी बार ;
रूपनगर के नैन द्वै, मानहु मायाद्वार ।

पाठक ! आपने अनेक नगर और दुर्ग देखे होंगे; उनके दरवाज़ों पर पहरा देते हुए पहरेदारों, बड़े-बड़े लोहे के फाटकों और उन पर लगे हुए लोहे के तीखे भालों को भी अवश्य देखा होगा । परंतु क्या कभी आपने ऐसे आश्चर्यजनक और भ्रमोत्पादक द्वार भी देखे ? इस रूप-नगर के द्वारों का हम क्या वर्णन करें ! यदि आप रूप-नगर के राजद्वार देख लें, तो आपका नगर के अंदर के ऊँचे, रमणीय और दर्शनीय प्रासादों को देखने का मन ही न करे; ऐसे सर्वांग सुंदर हैं ये नैन-द्वार !

संसार-भर के साइंटिस्ट (Scientists) तथा बड़े-बड़े कारीगर थक हारे, परंतु ऐसा द्वार न बना सके । कवि इनका वर्णन तक न कर सके और चित्रकारों से इनका चित्र तक न उतरा । इन दरवाज़ों का आकार ही निराला है । दोनों पुतली रूपी पहरेदार दिन-भर दरवाज़ों के एक कोने से दूसरे कोने तक टहल-टहलकर पहरा देते रहते हैं । कोई ग़ैर आदमी इनकी नज़र से बचकर नहीं जा

सकता । इनकी कभी बदली नहीं होती । बेचारे पुराने विश्वास-पात्र नौकर हैं; जादू के पुतले ही समझो ! ये कुछ बोलते नहीं, केवल अपने भिन्न-भिन्न भावों को ही झलकाते हैं । इनमें दया, करुणा और अनुराग का भाव देखते हैं, तो रूपनगर के दर्शनाभिलाषियों की हिम्मत बँध जाती है, और वे निधड़क अपने मन को इन पहरेदारों के सुपुर्द कर देते हैं । परंतु याद रखिए, यह द्वार किसी के मन को रूप-नगर की छवि दिखाकर वापिस नहीं लौटाते; उसको फिर हमेशा के लिये वहीं रहना पड़ता है । यदि इनमें क्रोध इत्यादि का भाव देखते हैं, तो किसी की इनके पास तक फटकने की हिम्मत नहीं होती । ये दिन भर पहरा देते हैं; और-और पहरेदारों की तरह रात को न जगकर आराम करते हैं । कभी कोई ऐसा दर्शक आ जाय, जो कि इनका परम मित्र हो, तब भले ही ये जगकर अपने मित्र को वार्तालाप का आनंद-प्रदान करें, वरना विना कोई कारण ये कभी नहीं जगते । इन्हें जगने की आवश्यकता ही क्या है । जब ये बरौनी रूपी बल्लम लगे हुए पलकरूपी कपाटों को अच्छी तरह से बंद कर सोते हैं; और इतने होशियार और चंचल हैं कि किसी के नगर की चहारदीवारी को बुरी आँखों से घूरते ही सजग हो जाते हैं, और इनके चेतन होते ही माया-द्वार खुल पड़ते हैं । उनको हाथ से छूने तक की जरूरत नहीं है, फिर तो

चोर नहीं बच सकता । उसको वे अपने माया-जाल में फँसा ही लेते हैं ।

अब दरवाज़े के कपाटों का हाल सुनिए; वे पल-पल में खुलते और बंद होते रहते हैं; वे पहरेदारों की आज्ञा का पालन करने में कुछ उठा नहीं रखते। उनके सोने पर बंद हो जाते हैं, और जगने पर खुल पड़ते हैं। और यदि वे किसी अपने प्रेमी को देखना चाहते हैं, तो अनिमेष होकर खुले रहते हैं। इनमें से होकर एक रज का कण तक प्रवेश नहीं कर सकता; नहीं तो रूप-नगर कभी का कुरूप न हो गया होता ?

इतने कोमल होने पर भी ये कभी-कभी वज्र का काम कर जाते हैं । ये बरौनो-बालरूपो भालों से सुरक्षित हैं, जो अत्यंत तीखे और दूर ही से हृदय को बेधनेवाले हैं। ये भाले मित्रों ही के हृदय में घुसकर घाव पैदा करते हैं, और मित्र ही इस द्वार में क़ैद किए जाते हैं; दूसरे नहीं। शत्रु तो इनमें खटकते हैं, इसलिये बाहर फेंक दिए जाते हैं। बरौनी के भालों से घायल होने और इस बंदीगृह में सज़ा पाने ही में मज़ा है। अपने मित्रों के विरह में कभी-कभी इनमें से जल-धार बहकर सबके दुखों को दूर कर देती है, और कभी-कभी दूना कर देती है। इस जल-धार में शत्रु और मित्र, दोनों बह जाते हैं। यह धारा भी कभी हर्ष की, कभी क्रोध की, कभी दया की,

कभी करुणा की, कभी वेदना की और कभी प्रेम की होती है और भिन्न-भिन्न असर रखती है। प्रत्येक द्वार में संसार के सब सुंदर सुंदर चित्र टँगे हैं। फिर इनमें तीन 'श्वेत श्याम, रतनार' घड़े हैं। जो—

अमी, हलाहल, मद भरे, श्वेत श्याम रतनार ;
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार ।

कपटी काम

नैनन पुतरी मैन यह, ह्वै पलकन की ओट ;
दीठि बान तकि तानकर, हरत प्रान करि चोट ।

नायिका के नेत्रों में जिनको आप पुतलियाँ समझे हुए हैं, वे पुतलियाँ नहीं हैं । ये तो आँखों में मदन महाराज विराज रहे हैं । आप पलकों की ओट से दृष्टिरूपी बाणों से निशाना ताक-कर ऐसी चोट करते हैं कि प्राण हर लेते हैं ।

मालूम होता है कि शिवजी से डरकर मदन महाराज ने नायिका के नेत्रों को अपना निवास-स्थान बनाया है । ख़ूब एक कोने में आश्रय लिया है । यहाँ वे सुरक्षित रहेंगे, इसमें कोई शक नहीं; क्योंकि जब ये डरकर स्त्री की शरण में आ गए, तब भोले शिव इन्हें क्या कह सकते हैं । परंतु हज़रत अपनी आदत से बाज़ नहीं आते हैं । फिर वही बाण और कमान, फिर वही घोड़े और वही मैदान । क्यों नहीं, शिवजी का तो अब डर रहा नहीं, फिर वे कब चुप बैठ सकते हैं । पहले सरे मैदान शिकार किया करते थे; अब तो आँखों की ओट से आखेट करते हैं ।

इन आँखों के इतनी मनोहर मालूम होने का रहस्य अब प्रकट हुआ है । इनमें तो प्रत्यक्ष कामदेव विराज रहे हैं; फिर

भला क्यों न ये इतनी सुंदर प्रतीत हों। नायिका के नेत्रों के सामने से गुज़रते ही एक चोट लगती थी, मगर इधर-उधर देखते हैं, तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता था। इस शिकारी का हमें अब पता लगा है। पहले हम नहीं जानते थे कि यह इन गुरुजी की कारगुज़ारी है।

मगर एक बात है; मदन महाराज ! मृग का वेश बनाकर मनुष्यों के मनरूपी मृगों को मारने से आपकी मृगया की क़ोई महत्ता नहीं मालूम होती।

मायावी की माया

मायावी नैना चपल, स्थिर, पीन अरु दीन ;
वनत कमल खंजन कभू, मृग, चकोर, अरु मीन ।

ये नेत्र बड़े मायावी हैं—ये पूरे जादूगर हैं। देखते नहीं हो कि ये किस प्रकार मौक़े-मौक़े पर भिन्न-भिन्न भेष बनाते रहते हैं—कभी ये इतने चंचल बन जाते हैं कि चपलता स्वयं इनके सामने चपती है; कभी ये बहुत विस्फारित हो जाते हैं, तो कभी दीन-हीन बनकर बैठ जाते हैं—मानो सचमुच ही ये "नैना बड़े ग़रीब हैं, रहत पलक की ओट"—कभी सरोज का-सा सुंदर स्वरूप बना लेते हैं, तो कभी खंजन के समान चंचल बन जाते हैं; कभी मृग की-सी भोली-भाली दृष्टि बना लेते हैं, तो कभी चकोर की नाईं टकटकी लगाकर देखने लगते हैं; कभी-कभी मीन की-सी चपलता इख़्तियार कर लेते हैं, तो कभी-कभी इस तरह स्थिर हो जाते हैं कि स्वयं स्थिरता भी सकुचाती है !

देखी इन नेत्रों की करामात ! इन्होंने तो कामरूप देश की कामिनियों को भी किश्त दे दी। पोलीटिक्स में भी ये पूरे प्रवीण प्रतीत होते हैं। जब जैसा मौक़ा देखते हैं, तब वैसा ही रंग-ढंग, वैसा ही हाव-भाव, वैसी ही सूरत-शकल बनाकर जिस

तरह हो अपने कार्य की सिद्धि करते हैं। जब नायिका को कोई चिंता होती है, तब उसके नेत्र अनिमेष हो कमल-पुष्प की पंखुड़ियों की तरह खुले-के-खुले रह जाते हैं, अथवा सोच में रात्रि के कमलों के सदृश सकुचा जाते हैं। जब नायिका को कामोद्दीपन होता है, तो नेत्रों में काम छा जाता है, और वे मीन के समान मुखरूपी सरोवर में तैरने लगते हैं। जब नायिका के हृदय में भय उत्पन्न होता है, तो नेत्र खंजन के समान चंचल हो जाते हैं। जब नायिका को प्यारे की प्रतीक्षा होती है, तो प्रेम-दृष्टि से नेत्र टकटकी लगाकर नायक के आने के मार्ग को देखने लगते हैं। जब दीनता दिखलानी होती है, तो मृग बनकर दया की भीख माँगते हैं। ये बड़े बाँके तीरंदाज़ भी हैं। जब इस नेत्ररूपी कमान से मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तीखे-तीखे तीर चलते हैं, तो बड़े-बड़े योद्धाओं को युद्ध-क्षेत्र से पीठ दिखलाकर भागना पड़ता है। कभी ये नेत्र काम-दृष्टि से काम तमाम कर डालते हैं, तो कभी सोच-दृष्टि से शिकार खेलने लगते हैं। कभी ये भय-दृष्टि से भगा देते हैं, तो कभी प्रेम-दृष्टि से पाश में बाँधकर कारागृह में डाल देते हैं।

इन नेत्रों की सुंदरता का वर्णन कहाँ तक किया जाय, बस इसी बात से आप इनके सौंदर्य का अनुमान कर लीजिएगा

कि कमल इन नेत्रों की कमनीयता को देखकर सदा जल में खड़ा हुआ सूर्य को जलांजलि देता रहता है। इस कठोर तप से सूर्य को प्रसन्न करके सरोज नेत्रों के सदृश सुंदरता की प्राप्ति का वर माँगना चाहता है। इन नेत्रों की-सी नायाब छवि पाने के लिये ही कुरंग कानन का सेवन करते हैं। इसी तरह मीन भी जल में घोर तप कर रही है। इसी हेतु से चकोर चंद्रमा की चाकरी कर रहा है, और खंजन भी इसी चिंता के भंजन की फ़िक्र में कहीं फिर रहा है।

प्रेम-पीड़ा

मीन कमल जल में रहैं, पै नैनन में नीर ;
वाहू करते पीर ये, हमहूँ करते पीर ।

मछली और कमलों का जो आधार है, वही नैनों का आधेय है। मीन और कमल जल विना जीवित नहीं रह सकते, किंतु नैन नीर के आश्रय-दाता हैं। अब पाठक स्वयं सोच लें, इनमें से कौन से महत्ता में बढ़े-चढ़े हैं। मीन और कमल तो ग़ुलामों के भी ग़ुलाम हैं; नैनों का ग़ुलाम नीर उनका मालिक है। फिर भला वे नेत्रों की समता कैसे पा सकते हैं। यह कवियों की कही हुई झूठी कपोल-कल्पित कथाएँ हैं, जिनके आधार पर हम नेत्रों को ही उलटा कमल और मीन की उपमा दे बैठते हैं। अब आप ही कहिए, हम ऐसे कवियों को किस वस्तु से उपमा दें? नेत्रों को इतना ऐश्वर्यशाली देखकर कमल और मछलियों के मन में पीड़ा होती है। यह कवियों ही की करतूत है कि उन्होंने उनको, आँखों के सदृश कहकर, झूठा बढ़ावा दे दिया है, जिससे वे अपने आश्रय-दाता के आश्रय-दाता तक की ईर्ष्या करने दौड़ती हैं।

पाठक! हमारा क्या बिगड़ता है—दुःख होगा, तो उनको

होगा। परंतु यह हमारा कर्तव्य है कि इन बड़ों की होड़ा-होड़, गोड़ फोड़कर, व्यर्थ कष्ट उठानेवालों को हम सचेत कर दें। हमारे चित्त को भी ये नेत्र अपने सौंदर्य के प्रभाव से पीड़ित करते हैं; परंतु यह प्रेम-पीड़ा है! जिनको यह पीड़ा होती है, और जिनको नहीं होती, उन दोनों को ही भाग्यशाली समझना चाहिए; जिन्होंने इस पीड़ा का अनुभव नहीं किया, वे तो आनंद में हैं ही, परंतु जिन्होंने इसका मज़ा चखा है, वे भी इसी में परमानंद का अनुभव करते हैं, और परमेश्वर से इस पीडा को बढ़ाने की ही प्रार्थना करते हैं।

चपलता की चाह

चंचलता भावत हमें, कारण चंचल नैन ;
जैसे को तैसा रुचै, कबहूँ अन्य रुचै न।

चंचलता को हम चाहते हैं। चंचलता की चटकीली चर्चा सबके चित्त को चुरा लेती है। जहाँ देखते हैं, चंचलता का चमत्कार नज़र पड़ता है। सर्वत्र उसके गीत गाए जा रहे हैं। कवियों के काव्य में भी इसी की कथा मिलती है। एक साहब फ़रमाते हैं—"सौ घूँघट की ओट करो, पर चंचल नैन छिपैं न छिपाए।" तो दूसरे शायर, जिन्हें चंचलता की चाट पड़ गई है, कहते हैं—"कुछ भी मज़ा नहीं जो यार चुलबुला न हो।" यह सब कुछ माना। किंतु किसी ने यह भी कभी ख़याल किया कि चंचलता को सब इतना क्यों चाहते हैं ?

ये नेत्र सदैव नाचते ही रहते हैं। रात में, निद्रा में भी ये चुप नहीं रहते। स्वप्न-संसार में दौड़ लगाया करते हैं—शांति से बैठना तो ये सीखे ही नहीं। इनकी चंचलता के कारण बड़ों-बड़ों की नाक में दम है। अब यह नियम है कि जो जैसा होता है, उसको वैसा ही रुचता है। अतः नेत्रों को चंचल वस्तुओं से बड़ी प्रीति है, क्योंकि वे ख़ुद स्वभाव से चंचल हैं। पाठक!

आप समझ गए होंगे कि चंचलता के चसके का क्या भेद है। चपलता के कारण ही हमें मृग छलाँगें मारता हुआ अच्छा लगता है। इसीलिये मीन जल में तैरती हुई सुंदर लगती है। इसी चंचलता के कारण चमकते तारे आँखों को अच्छे लगते हैं। चंचलता के ही कारण हमें बालक भाते हैं। चंचलता के ही कारण हम चिड़ियों को चाहते हैं। चंचलता के प्रभाव का कहाँ तक वर्णन करें; इसने 'च' अक्षर तक को ऐसा अपना लिया है कि चंचलता के पर्यायवाची शब्दों में जहाँ देखते हैं, पहलेपहल 'च' चमचमा रहा है, यथा—चंचलता में 'च', तो चपलता में 'च', तो चुलबुलापन में 'च'—'च' की अच्छी चल रही है।

प्रेम का प्रभाव

पिय पै जादू कीन, कानन पहले सेइ के ;
पान प्रेमरस लीन, खिंचि आए पिय बैल बनि ।

नायिका के नेत्रों ने पहले कानन का सेवन किया। वहाँ एकांत में वास करके उन्होंने उच्चाटन, वशीकरणादि मंत्रों का साधन किया, जिससे उनमें जादू की-सी अथवा चुंबक की-सी आकर्षण शक्ति आ गई। उन्होंने पहलेपहल इस ताक़त को अपनी प्यारी सखी नायिका के प्रिय पति नायक पर ही आज़माया। उन्होंने प्रेम-रसरूपी पान नायकजी को खिलाया, और आप उसको लेते ही बैल बनकर खिंच आए।

पाठक ! आपने कामरूप देश की आश्चर्यजनक कथा-कहानियाँ सुनी होंगी। वहाँ की कामिनियाँ जादू-टोना करने में बड़ी मशहूर हैं। वे जिस सुंदर पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं, उसे पान खिलाकर तोता, बैल या मेंढ़ा बना लेती हैं। उनको नित्य अपने पास रखती हैं और जब इच्छा होती है, तब उन्हें पुनः पुरुष बनाकर प्रेम-केलि करती हैं। उनके जादू के जाल में फँसकर बेचारे मनुष्य फिर कभी बाहर नहीं निकल सकते। आजन्म जानवर ही बने रहते हैं। यही हाल हमारे

नायकजी का हुआ है। कान तक बड़ी, सुंदर-सुंदर आँखों ने, उन पर अपना प्रेम प्रकट करके, उनको बैल-जैसा सीधा-सादा और भोला-भाला पशु बना लिया, और वे उनकी इच्छा और आज्ञा के अनुसार ही सब काम करने लगे। आप कहेंगे कि उन्होंने अपने प्रेमी को बैल बनाकर बड़ा बुरा काम किया, परंतु क्या आप नहीं जानते कि बैल धर्म का अवतार है, उससे संसार को बड़ा फ़ायदा पहुँचता है। उस पर शिवजी की बड़ी कृपा है।

परंतु हाँ ! एक बात का डर अवश्य है—जो कहीं वह पाश्चात्य सभ्यों के हाथ लग गया, तो बेचारे की बड़ी दुर्दशा होगी। देखते नहीं, आज इन धर्म-वीरों की इस धर्म-भूमि भारत में लाखों की संख्या में हत्याएँ होती हैं और हम चूँ तक नहीं कर सकते। जिनकी माता गायों के दूध, दधि और घृत से हमारा वीर्य बनता है, और उससे हमारी संतान उत्पन्न होकर फिर वही अमोल अमृत समान रस पीकर पलती हैं; उन्हीं हमारी प्यारी माताओं और प्यारे भाइयों की हत्या हम अपने ही देश में होती देखते हैं, और डर या लालच-वश गुलामों की तरह सहे जाते हैं। भला यह हत्या हमारे माथे नहीं, तो और किसके माथे है ? हिंदूधर्मावलंबियों को चाहिए कि वे अपने और अपने पूर्वजों के नाम को सार्थक कर दिखावें। अब भी समय

है । क्या हत्यारों का सामना करने की इनकी हिम्मत नहीं ?—अवश्य है ।

हे हमारे प्यारे गोपाल ! तू गोवर्धन गिरि पर गाएँ चराने, बंसी पर गीत गा-गाकर गोपियों की गगरियाँ फोड़ने और गोरस ग्रहण करने और इस तुम्हारे सर्वप्रिय गोधन को घातकों के हाथ से बचाने कब आवेगा ? जल्द आ ! अब तो यह सितम हमसे सहा नहीं जाता !

चित्र से चिढ़

लखि सुखमा निज रूप की, नैन झँपत हर बार ;
चित्र कोउ हिय में न तरु, लेवहि तुरत उतार ।

नेत्र जो बार-बार झँपते रहते हैं, इसका कारण यह है कि ये अपने सौंदर्य को देखकर डरते हैं कि कहीं कोई इस सुंदर 'सीनरी', इस नायाब नज़ारे को देखकर तुरंत अपने दिल के हैंडकैमरे में इसका फ़ोटो न ले ले। मगर मालूम होता है, इन बेचारे भोले-भाले नेत्रों को यह पता नहीं है कि ये चित्रकार भी बड़े ग़ज़ब के लोग होते हैं। ये अपनी चातुरी से ख़ुद आँखें नहीं, आँखों के अक्स को पानी में देखकर उसी वक़्त तस्वीर ले लेते हैं। मुग़ल-सम्राट् अकबर के राज्य-काल में, उसी के दरबार में के चित्रकारों में से, एक ने इसी प्रकार एक चित्र तैयार करके बादशाह सलामत की भेंट किया था।

यह दिल ऐसा-वैसा कैमरा नहीं है कि जिससे कोई बचकर निकल सकता है। आँखों का हा क्या, इसमें तो यार लोग सारे यार का ही ख़ाका खींच लेते हैं। और फिर उसको ख़ानए दिल में लगा देते हैं और तबियत में जोश आते ही

एक नज़र उधर फेंक देते हैं—"दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली।" इसी दिल के आईने की दुहाई देते हुए कोई कहता है—

"बेमुरव्वत बेरुख़ी से शीशए दिल को न तोड़ ;
यह वही आईना है, जिसमें तेरी तस्वीर है।"

अतः नेत्रों को चाहिए कि अपने नायाब नमकीनपन पर अब इतना नाज़ करना छोड़ दें। इन बेचारों को शायद यह मालूम नहीं है कि एक-दो नहीं, हज़ारों की तादाद में इनके फ़ोटो की कॉपियाँ तैयार होकर अब बाज़ार में बिक रही हैं। एक बात और है, आपने नायिकाओं को देखा होगा कि अपने सलोने मुख को दीठ से बचाने के लिये उस पर दे लेती हैं ईठ—मगर नतीजा क्या होता है—"दूनी ह्वै लागन लगी दिए दिठौना दीठ।" यही हाल इन आँखों का है। ये तो बार-बार इसलिये झँपती हैं कि जिससे कोई इनकी तस्वीर न ले ले, मगर बार-बार झँपने के कारण ये और ज़्यादा ख़ूबसूरत मालूम होने लगती हैं। नतीजा यह होता है कि लोगों की तस्वीर लेने की ख़्वाहिश और दुगुनी हो जाती है।

प्रेम-पाश

ढिग जल मंदिर मीन द्वै, पलक प्रकटि दुरि जात ;
युवक ताहि फाँसन चहत, ताही में फँसि जात ।

एक सुंदर सरोवर पर किसी का प्रमोद-प्रासाद—आनंद-भवन है। अटारी पर बैठी हुई नायिका पानी में झाँक रही है। उसके नेत्रों का प्रतिबिंब, पलक खुलने और झँपने की क्रिया के कारण, कभी जल में दिखाई देता है और कभी अदृश्य हो जाता है। नीचे की रोंस में जवानी दीवानी के बहकाए हुए नायक महाशय विराजमान हैं। आपकी नज़र जलाशय में पड़ते ही आपने देखा कि दो सुंदर मछलियाँ पल-पल में प्रकट होकर जल में ग़ायब हो जाती हैं। बेचारे को ऐसी मछलियों का कभी दर्शन तक नहीं हुआ था, इसलिये मन में पाप समा गया। आप तुरंत जाकर जाल ले आए, जाल पानी में डालकर उन चंचल मछलियों को फँसाने का प्रयत्न करने लगे।

नायिका या तो इनको और ज्यादा बेवक़ूफ़ बनाने के इरादे से वहाँ से नहीं हटी ; और यदि उसे यह मालूम न हुआ होगा कि ये मेरी आँखों के प्रतिबिंब को ही मछली समझकर पकड़ना चाहते हैं, तो शायद वह उनके शिकार करने के चातुर्य को

ही देखने के लिये वहाँ डटी रही। युवक महाशय अपनी धुन में ही मग्न थे। दिन-भर बीत गया पर मछली हाथ न आई। आपकी समझ में कुछ नहीं आया। सोचने लगे, बड़ी अजीब मछलियाँ हैं—सामने दिखाई देती हैं, पर जाल में नहीं फँसती। इसी तरह उन मछलियों के जाल में आप फँसे रहे।

अंत में हारकर आपने ऊपर की ओर दृष्टि फेंकी—आपके झेंप की कमी न रही। उसको नायिका के नेत्रों का प्रतिबिंब समझते ही आप नायिका के नयनरूपी मीन के जाल में ही जा फँसे—प्रेम-पाश में उलझ गए। देखा आपने! सुलझाने को जाकर ख़ुद ही उलझ गए। इतनी मेहनत का यह फल मिला।

काम की कसौटी

कोटिन हू विधि जगत में, सिरज वस्तु सुखदैन ;
सुंदरता को जाँचिबे, रचे कसौटी नैन ।

विधि ने संसार में करोड़ों सुखदायक वस्तुओं की सृष्टि करके उनके सौंदर्य को जाँचने के लिये नयनरूपी कसौटी बनाई है। सचमुच बड़ी बढ़िया कसौटी है। जिस सौंदर्य को चाहो इस पर कसकर देख लो, उसी वक़्त यह बतला देगी कि खरा है या खोटा। एक उर्दू के शायर ने इन नयनों को काँटा बनाया है। सुनिए—

सीरत तो एक जौहरे ख़ुफ़िया बशर का है ;
तुलता है जिसमें हुस्न वह काँटा नज़र का है।

यह नज़र का काँटा हुस्न तौलता है, किंतु कसौटी के मुक़ाबले में यह काँटा नहीं ठहर सकता। काँटे में बाँटों का झगड़ा रहता है। अगर बाँटों के रखने में थोड़ी भी ग़लती हो जाय, तो तौल कुछ-का-कुछ हो जाय। अगर किसी को बाँटों की पहचान न हो, तो कुछ-का-कुछ समझ ले। इसके अतिरिक्त यदि काँटे में थोड़ी-सी भी कान हो, तो बड़ी भारी ग़लतफ़हमी हो जाने का डर है। कसौटी में इस क़िस्म की कोई दिक़्क़त पेश

नहीं आ सकती। बस, वस्तु को लिया और उस पर कसा और उसी वक़्त असलियत को पहुँच गए। इस कसौटी के विषय में अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि विधि ने दया करके हम सबको यह कसौटी दी है। कसौटी देकर विधि ने यह बड़ा बुद्धिमानी का काम किया, वरना उसकी सृष्टि में रूप और कुरूप दोनों एक भाव बिकते। बड़ा भारी अन्याय होता। जहाँ इस वक़्त हुस्न के बाज़ार में आप चहल-पहल देखते हैं, वहाँ आप एकदम सन्नाटा पाते और सौंदर्योपासना का किसी को स्वप्न भी नहीं आता!

चतुर चकोर

चमक रहे तारे नहीं, ये नभ में चहुँ ओर;
पतियन को हैं खोजते, विरहिनि नयन-चकोर ।

ये जो नभ में चमक रहे हैं, वे तारे नहीं हैं; किंतु विरहिनी स्त्रियों के नेत्र चकोर बनकर अपनी नायिकाओं के पतियों को ढूँढ रहे हैं।

अब तो आँखें अच्छी उड़ान लेने लगी हैं। कहाँ पहुँची हैं, आसमान पर ! अब पति कहाँ छिप सकते हैं ? अब तो आँखें ऊपर से दूरबीन की तरह पृथ्वीतल का कोना-कोना देख लेंगी। पति होंगे तो पृथ्वी पर ही, फिर बचकर कहाँ जा सकते हैं। आँखों की इस हालत को देखते हुए तो अगर पतिजी महाराज पृथ्वी को छोड़कर सातवें आसमान पर पहुँच जायँ, तो वहाँ से भी ढूँढकर ये उनको निकाल लाएँगी।

आवश्यकता से ही नए-नए आविष्कार उत्पन्न होते हैं। यदि यह आवश्यकता न होती, तो बेचारी नायिकाएँ क्यों अपनी प्यारी आँखों को तारे बनाकर, इतनी ऊँची उड़ाकर, रात के समय अपने पतियों को उनसे ढुँढवातीं।

हम इन तारों की सुंदरता को देखकर बड़े प्रसन्न हुआ

करते थे। किंतु इनकी सुंदरता का रहस्य तो हमें अब मालूम हुआ है। ये तो नायिकाओं के सुंदर नेत्र हैं। भला फिर क्यों न सुंदर दिखलाई दें। अफ़सोस ! हम चंद्र नहीं हुए, वरना ख़ूब रात-भर ऊपर से ही इन आँखों के सौंदर्य का निरीक्षण किया करते। सौंदर्योपासक तो दो सुंदर नेत्रों को ही देखकर मुग्ध हो जाते हैं, फिर भला जहाँ इतनी बड़ी तादाद में ख़ूबसूरत आँखें देखने को मिल जायँ, तब तो कहना ही क्या है ! हमारी आँखें सदा रात को तारात्रों पर जाकर पड़ती हैं, इसका कारण अब मालूम हुआ है। हमारे नेत्र अपने सहजातियों को देखकर प्रसन्न होते हैं और प्रेमवश बार-बार उधर ही देखते हैं।

मोहिनी मछलियाँ

कहियत सरिता मनि हीं, जाल फँसावत लोग ;
तिय मुख सरिता मीन युग, पै फाँसैं सब लोग ।

हम देखते हैं कि कुछ लोग नदी के जल में जाल लगाकर मछलियाँ पकड़ते हैं। इन बेचारों को अपने इस पेशे में बड़ा दुःख होता होगा। पहले तो जाल बनाना, उसी को बहुत समय और परिश्रम चाहिए, फिर उसको ले जाकर नदी के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ खूब मछलियाँ हों, छोड़ना । तदुपरांत धैर्य रखकर परमेश्वर के आसरे घंटों तक बैठे रहना । जब इतनी मुसीबत उठाई, तो कहीं दो-चार मछलियाँ हाथ लगीं। फिर इस पर भी मुसीबत यह कि इन मछलियों का हाथ आना अनिश्चित है ; कभी दो-चार हाथ लग गईं, तो कभी एक भी नहीं; क्योंकि पकड़नेवाले कोई ईश्वर के घर से ठेका तो ले ही नहीं लेते कि निश्चित संख्या में मछलियाँ मिल जायँ। कभी-कभी यह भी होता है कि चतुर मछलियाँ जाल के फाँस में आती ही नहीं और कई-कई आकर भी निकल जाती हैं । मतलब यह है कि बेचारे धीवर को मछलियाँ बड़ी तकलीफ़ से नसीब होती हैं।

परंतु ज़रा ग़ौर कीजिए। कविजी ने कड़ी खोज के बाद पता लगाया है कि तिय-छविरूपी सरिता में, जिसमें प्रेम-जल अगाध परिमाण में भरा है, चक्षुरूपी दो ऐसी चतुर मछलियाँ रहती हैं, जिनकी कार्यवाही देखकर अक़्ल दंग हो जाती है। कहाँ तो कुछ धीवरों का यह काम था कि मछलियाँ पकड़ते, परंतु यहाँ तो उलटी माया हो गई। प्रेम-सलिलपूर्ण नद में रहनेवाली इन दो ही मछलियों ने समस्त संसार के मनुष्यों को फँसा लिया। और, फँसाया भी किस अजीब ढंग से! क्या कोई जाल फैलाया, क्या कोई अच्छी जगह ढूँढी, जहाँ शिकार प्रचुर परिमाण में हो, क्या इनको भी घंटों ईश्वर के आसरे बैठे रहना पड़ा, क्या इन्होंने भी अपने कार्य में परिश्रम किया और मुसीबतें उठाईं, और क्या इनके प्रयत्न का भी परिणाम अनिश्चित रहा? नहीं-नहीं, ऐसा समझना तो भारी भूल होगी। जाल की ज़रूरत नहीं—इनको विना जाल समस्त जगत् को इस ख़ूबी से फँसाना आता है कि फँसे हुओं का निकलना मुश्किल हो जाता है। अच्छा स्थान कौन ढूँढे, यहाँ तो अपने आप ही खिंचे हुए सब लोग शिकार-रूप में आ उपस्थित होते हैं; उनको शिकारी के चंगुल में फँसने में ही आनंद होता है। घंटों बैठकर बाट जोहना तो दूर रहा, एक पल-भर में ही यहाँ तो लाखों मन फँस जाते हैं। ईश्वर के आसरे

की बात तो दूर रही, यहाँ तो दावे के साथ सब कार्य होते हैं, ईश्वर का इस मामले में दख़ल नहीं है। इन दो मछलियों को तो सब संसार को फँसाने में कोई प्रयास नहीं होता। उलटा आनंद होता है। इस पर भी तुर्रा यह कि यत्न का फल निश्चित होता है। निश्चित संख्या से ज़्यादा भले ही फँस जायँ, पर कम की संभावना नहीं।

धन्य, कविजी महाराज, आपने तो यह खोजकर संसार का बड़ा उपकार किया है। आजकल का जगत् कृतज्ञ नहीं, नहीं तो निश्चय ही आपको कोई-न-कोई ऊँचा और सम्मानित पद मिलता। आपका यह संदेश हम सबको सुनाकर कह देते हैं कि भाई, सावधान रहना, वरना बचाव होना मुश्किल है।

बड़ा व्यापारी

तिया रूप बाज़ार में, सबै बिकत बिन दाम ;
नैन होहिं बिच बटखेर, बड़ व्यापारी काम ।

सत्य है, भला रूप-बाज़ार में ख़रीदने जाकर कौन नहीं बिका ? फिर जहाँ कामदेव-जैसे व्यापारी हैं, जो यदि ख़रीद-दार कुछ न ख़रीदें, तो धनुष-बाण लेकर उन्हें मारने तक को तैयार बैठे हैं ; और यदि बिकनेवाले बिकना न चाहें, तो उनका भी यही हाल होता है । परंतु इसमें बेचारे काम-व्यापारी का क्या क़सूर है । वह तो इस रूप-बाज़ार का सबसे बड़ा व्यापारी है, और बिना दाम लिए-दिए ही ख़रीद व फ़रोख़्त करता है । इसमें ग़लती है तो ख़रीदने और बिकनेवालों की । यहाँ तो लोग बिन दाम ही ग्राहकों के हाथ बिक जाते हैं और उलटे उन्हीं को कुछ पेशगी देते हैं ।

और सुन लीजिए; तौलने के लिये बाँट कैसे अच्छे और टकसाली हैं । इनसे तौला जाकर कोई कम या ज़्यादा नहीं उतर सकता । पूरी-पूरी तौल जोख होती है, तब कहीं सौदा होता है । परंतु सौदा पंसद आने पर तो ग्राहकजी स्वयं सौदा हो जाते हैं, और रूप के सौदागर के हाथ उलटा कुछ गाँठ का देकर

बिक जाते हैं। कभी-कभी तो व्यापारी के बाँटों को देखकर ही ख़रीददार लट्टू हो जाते हैं और सब कुछ भूल जाते हैं। फिर जो कहीं इनके बाँटों से वे बाँट मिल गए, तो आनंद की सीमा नहीं रहती, जिसे वे बाँट, खुद बखुद, बात-की-बात में बोलकर बता देते हैं।

यह सट्टा बुरा है—इसमें सबको बट्टा लगता है—कभी ख़रीददारों की मरम्मत बनती है, तो कभी बेचने-बिकनेवालों की हजामत! यहाँ तक पता नहीं रहता कि किस वक़्त कौन बिक जाय, और कौन ख़रीद ले। व्यापारी लोग इस क़िस्म के व्यापार से बचकर ही चलें।

सम्मान के साधन

इन नयनन के रूप को, कहँ लौं करों बखान;
इनते कविता कामिनी, पावत हैं सम्मान।

"इन नयनों के रूप का कहाँ तक वर्णन करूँ। कविता और कामिनी इन्हीं के कारण आदर पाती हैं।"

सत्य है। इन नयनों के अनुपम रूप का वर्णन करना कठिन है। कारण कि—"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" दरअसल बड़ी मुसीबत है। कामिनी की शोभा उसके सुंदर नेत्र हैं। यदि ये न हों, तो उसे कोई फूटी आँख से भी न देखे। एक नेत्रों के विना उसका सारा रंग-रूप धूल में मिल जाय। नेत्र स्त्रियों के हथियार हैं। जब किसी के हथियार छिन गए, फिर क्या है, फिर उससे कौन डरेगा? डरना तो दूर रहा, बल्कि लोग उसे और ज़बरदस्ती डरायँगे। नेत्रों के विना नायिका के लिये अपने जन्म-सिद्ध स्वत्वों की रक्षा करना भी कठिन हो जायगा। विना तीरों के कमान किस काम की। और तीर भी ऐसे कि—"चल चित बेधत चुकत नहिं।" ये वे हथियार हैं, जो—"वक़्त पड़े चूकें नहीं, करत लाख में चोट।" फिर भला इनकी क़दर क्यों न होगी। इसकी ताईद वे लोग करेंगे, जो

मैदानेजंग में इन हथियारों से ज़ख़्मी हो चुके हैं। ज़ख़्म भी इनका ऐसी-वैसी दवा से नहीं भरता।

नैन बान के घाव को, एकहि कह्यो उपाव ;
भुज पट्टी कुच पोटली, अधरन को सिकताव।

चाहिए उस ज़ख़्म के लिये।

अब रही कविता। सो यह भी तब तक शोभा नहीं देती, जब तक कि इसमें आँखों का वर्णन नहीं पाया जाता, अथवा यों कहिए कि भाव-रूपी नेत्रों से ही कविता-कामिनी की कमनीयता बढ़ती है। अमिय, हलाहल, मद भरे नेत्रों पर दो लाइन का एक छोटा-सा दोहा कवि को अमर बना देता है। फिर नेत्र ही तो नेचर-निरीक्षण करके हमको नूतन और नायाब भाव नज़र करते हैं, और सदा हमारे रिक्त भंडार को उनसे भरते हैं। सारांश, नेत्रों के विना कविता और कामिनी दोनों की कमनीयता में कमी आ जायगी।

प्रेम-प्रकाश

जे नाहीं खद्योत जो, निशि में इत उत धात ;
आँख वियोगिनि पतिन को, जहँ-तहँ ढूँढ़न जात ।

ये जो रात्रि में इधर-उधर उड़ रहे हैं, सो खद्योत नहीं हैं। तो क्या हैं ? ये तो वियोगिनी स्त्रियों की आँखें हैं, जो जहाँ-तहाँ उनके पतियों कों ढूँढ़ रही हैं।

वियोगिनियों ने पतियां को ढूँढ़ने की अंत में अच्छी तरकीब सोची है। वास्तव में आँखों से बढ़कर ढूँढ़ने का काम कौन कर सकता है; क्योंकि मुमकिन है कि कोई दूसरा तो पहचानने में भी भूल-चूक कर दे ! परंतु आँखें तो ऐसा निशाना लगाया करेंगी कि पति महाशयों को, जहाँ कहीं होंगे, लाखों में से ढूँढ़कर निकाल लाएँगी। और ज़्यादा अरसा गुज़र जाने से यदि कोई पति घर का रास्ता भूल जायगा, तो उसको राह वतला देंगी। एक और फ़ायदा है। रात के समय ये आँखें मसालों का भी काम देंगी वरना अँधेरे में कोई पतिदेव किसो गड्ढे में गिर जायँ, तो बड़ी मुश्किल हो जाय। एक बात यह भी है कि किसी दूत के संग संदेश भेजने से पति न भी आते। दूसरे यह भी था कि क़ासिद नायिका की विरह-व्यथा का वर्णन करने में समर्थ न होता।

आँखों के इस काम को अंज़ाम देने से इस तरह की कोई कठिनाई नहीं रही। आँख से बढ़कर भला नायिका की विरह-वेदना नायक को कौन सुना सकता है। इसके अतिरिक्त आँखें अपना प्रभाव भी उन पर डाल सकती हैं। भला जो आँखें पतियों को इतनी प्यारी हैं, वे ख़ुद कष्ट पाकर अँधेरी रातों में ढूँढ़ने निकलें और पति न आवें यह तो कभी संभव ही नहीं। जब उन सजल नेत्रों को पति देखते होंगे, तो मामूली तो क्या बड़े मानियों के मान छूट जाते होंगे।

इस दफ़ा वियोगिनियों ने यह ऐसा दूत ढूँढ़ निकाला है कि बस यह समझ लीजिए कि उनकी विरह-व्यथा भविष्य में बहुत कम हो जायगी। हाँ, बेचारा विरह मारा गया। उसका अब इतना भय नहीं रहेगा। सच है—"काऊ के रहत न कभू सब दिन एक समान।" मौक़ा है, इतने दिनों तक विरह की ख़ूब चलती थी। अब वे हवा खावें।

शिकारी की शिकायत

कर गहि बान कमान, नैना कानन जात है ;
कैसे बाचि है जान, मृग बनि मारत मृगन को।

ये नए नटखट शिकारी नैन, कटाक्षरूपी अतीव तीक्ष्ण बाण और भ्रू-रूपी कमान को लेकर कानरूपी वन को जाते हैं। लीजिए, यह और सुनिए—कानन को जाकर ये शिकारी मृगों को धोखा देकर मोहित करने के लिये ख़ुद ही मृग बन जाते हैं। मृग बेचारे उनके असली रूप को न पहचानकर मंत्र-मुग्ध की तरह इन नवागंतुकों की ओर टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। परंतु फिर भी माया-जाल में फँसे ही रहते हैं, और शिकारी को शिकार करने का पूरा-पूरा अवकाश देते हैं। वे अचंभे में आकर इधर-उधर देखते हैं, परंतु समझ कुछ काम नहीं करती। इतने में शिकारी इनका काम तमाम करके इनको अपने साथ लेते जाते हैं।

यही हाल हमारे युवकों का होता है। वे मृग-जैसे नायिका के नेत्र देखकर उन पर मोहित हो जाते हैं और कटाक्ष बाणों से बिंधकर भी नहीं टलते। उन्हें घायल होने में ही मज़ा मिलता है।

स्वर्ग का सुख

लाज भरे रति रँग रँगे, स्वर्गानँद सों पूर ;
जे निरखत ऐसे नयन, केलि-कला में सूर ।

लज्जा से भरे हुए, प्रेम के रंग में रँगे हुए और स्वर्ग का आनंद जिनमें झलकता हो, ऐसे सुंदर नेत्रों के दर्शन उन्हीं भाग्य-शाली वीर पुरुषों को होते हैं जो केलि-कला में कुशल होते हैं ।

यह रति समय की आँखों का वर्णन है । स्त्री में वैसे ही लज्जा होती है, फिर रति के समय का तो कहना ही क्या है । लज्जा का होना स्वाभाविक ही है । प्रेम तो है ही, विना प्रेम के मिलन ही कैसे हो सकता है, नायक रति-रीति में बड़ा प्रवीण है । अतः नायिका नायक के साथ स्वर्ग का सुख भोगती है । उसी स्वर्गीय सुख का सुखद फ़ोटो नायिका की आँखों में दीख पड़ता है । एक तो नारी के नेत्र वैसे ही सुंदर होते हैं, तिस पर उनमें लज्जा भरी हुई है, प्रेम में पगे हुए अलग हैं, और यहीं पर खातमा नहीं हुआ है, बल्कि स्वर्ग के सुख से पूरित हैं । वास्तव में ऐसे अनूठे नेत्रों को देखने का अधिकारी वही पुरुष हो सकता है जिसने केलि-कला युद्ध में अपनी शूरवीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की है ।

मुख के मददगार

मुखहिं अपूरन जानि के, रचे मनहु विधि नैन ;
रूप मधुर रस पान करि, रूप मधुर रस दैन ।

बड़े-बड़े अनुभवी और धुरंधर विद्वान् भी कभी-कभी भूल कर बैठते हैं। फिर यदि नौसिखिए भूल करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। विधाता ने पहलेपहल मनुष्य बनाकर उनको खान-पान द्वारा जीवित रखने के लिये मुखेंद्रिय बनाया, परंतु धीरे-धीरे मालूम हुआ कि यह इंद्रिय पूरी तरह पर अपना काम करने—कर्तव्य पालन करने में असमर्थ है। तब उसने मुख के मुख्य अंग जिह्वा को दंड देने के लिये दाँत बनाए। इनसे डरकर जिह्वा ने अपनी भरसक कोशिश की, और नया-नया रसास्वादन करने कराने लगी। सब कुछ किया, परंतु विधाता मुख को रूप-माधुर्य चखने में—सौंदर्य रस पान करने में, समर्थ न बना सका।

तब अंत में हैरान होकर उसने आँखों का आविष्कार किया। आँखों ने रूप-रस पीने का ठेका लेकर बेचारे मुख की मुसीबतों का मुक़ाबला किया और उन्हें मार भगाया। अपूर्ण मुख की पूर्ति हो गई। उसने आँखों को अपना दाहना अंग समझकर हरएक वस्तु का सार उन्हीं को देना शुरू

कर दिया। नेत्रों के चमकीलेपन और सौंदर्य की सीमा न रही। वे ही मनुष्यों के सब अंगों से सुंदर गिने जाने लगे। ऐसे क्यों न होते, उन्होंने तो अंग-प्रत्यंग को पालन और पोषण करनेवाले मुखराज की मदद की, और उनके कष्टों को काटा। यदि इस पर भी मुख उन पर विशेष कृपा न रखता और उनका सबसे ज़्यादा सम्मान न करता, तो यह उस मुख की मूर्खता गिनी जाती।

मुख ने इन्हें इतना तत्त्व प्रदान किया और इन्होंने इतना रूप-रस पिया कि इनमें से भी रूप-रस टपकने लगा। इन्होंने जो रस टपकाया, वह मधुरता में अमृत से कुछ कम न था। इससे बहुत-से लोगों की तृप्ति होने लगी। चारों ओर प्रेम-रस का प्रवाह बहने लगा।

हमको इन नैनों का बड़ा कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि इन्होंने परोपकार के लिये ही इस जगत् में जन्म लिया, और स्वार्थ को ताक़ में रखकर जितना रस स्वयं पिया, उससे सहस्रगुना ज़्यादा पिलाया। धन्य है, ऐसे निःस्वार्थ परोपकारियों को! अब के उपकारियों का अपकार करनेवाले और मददगारों को मारनेवाले कृतघ्न इनसे सबक़ सीखें।

काम के कमल

कर युगल सोहत मनहु, प्रेम-प्रलापाधार ;
किधौं नाल युत कमल द्वै, कीन्ह द्विगुंफित मार।

कामदेव की कारीगरी और कला-कौशल का कथन कहाँ तक करें। उसने कौन-सी ऐसी चीज़ बनाई, जिसे देखकर लोग वाह-वाह न कर उठे हों। एक कमल-नामक कोमल औज़ार लेकर, कमल का मसाला लेकर और कमल ही को नमूने के तौर पर रखकर उस काम-कारीगर ने क्या न कर दिखाया। इसी एकमात्र सामग्री से उसने कर्णकमल, करकमल, मुखकमल, नैनकमल, कुचकमल, पदकमल इत्यादि इत्यादि अनेक अनूठे आविष्कार सबकी आँखों के आगे कर दिखाए।

इस काम-कारीगर के कर की करामातों में से दो कोमल-से-कोमल कमल लेकर कामिनी के कान बनाने की करामात ही को कविजी यहाँ कह रहे हैं। कांता के दोनों कमनीय और कोमल कान इस प्रकार दिखाई देते हैं, मानो वे प्रिय प्राणपति के प्रेम-प्रलाप के संपुट हैं, जिनमें प्रेमप्रलाप-नामक रत्न बड़े यत्न के साथ रक्खा जाता है, और कभी प्रकट नहीं किया जाता। या वे ऐसे मालूम होते हैं, मानो मदन ने दो सुकोमल, सुगंधित, सुंदर

और सनाल सरसिज लेकर सहज ही में द्विगुंफित कर दिए हों।

पाठक! इन कमलों की क़िस्मत को दूसरे कमल तरसते होंगे। देखते नहीं, कभी-कभी नीलोत्पल जाकर उनसे वार्तालाप कर आते हैं; जैसे अपने वंश के उच्चपदाधिकारी के पास उस वंश के बहुत-से लोग चापलूसी करने जाया करते हैं और अन्यान्य सज्जनों की झूठमूठ चुग़ली तथा शिकायत किया करते हैं। मालूम होता है, नीले कमल इन्हीं लोगों की श्रेणी में से हैं। ये कर्ण कमलों को सिखा देते होंगे कि दूसरे लाल, पीले और श्वेत कमल तो आपकी समता करना चाहते हैं। कर्ण कमल भी इनकी बात मानकर और धोखे में आकर इन्हीं को नित्य अपने पास रखते हैं। उन्हें चाहिए कि बेचारे दूसरे ग़रीब कमलों की भी बात सुनें और सत्य-झूठ का निर्णय करके जो चाहें करें। पक्षपातरहित होना ही बड़ों को शोभा देता है।

प्रेम-प्रहरी

बेसर मोती करहु जनि, नाक बाल सुन चेत ;
काम पठायो पहरुआ, निशि दिन पहरा देत ।

हे नायिका ! तू इस बेसर के मोती को इस तरह अपने नाक का बाल न बना । अभी से सावधान हो जा । इसे इतना सिर मत चढ़ा । भला, यह भी कोई बात हुई कि यह हमेशा तेरे अधरों पर ही लटकता रहता है और तेरे मुख से एक-एक शब्द जो निकलता है, उसको नोट करता है । तेरी हर एक हरकत को देखता रहता है । देवियाँ स्वभाव से ही बड़ी भोली-भाली होती हैं । अतः पुरुषों की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाती हैं और इस प्रकार अपने हाथों से अपना ही सत्यानाश करती हैं । बावरी ! यह मोती कामदेव का भेजा हुआ पहरेदार है, जो रात-दिन तेरा पहरा देता है और तेरी एक-एक बात को नोट करता रहता है । तू इसको इतना लाड़-प्यार करती है; किंतु इसका मौक़ा लगते ही यह तेरी झूठी-झूठी शिकायतें करेगा ।

क्या तू नहीं जानती है कि पुलिस में नौकरी करनेवाले मनुष्य अपना कर्तव्य पालन करने में बड़े पक्के होते हैं ।

पुलिस में नौकरी करनेवाले, औरों का तो ज़िक्र ही क्या है, ख़ुद अपने आपको मुक़दमों में फँसा लिया करते हैं। इनको रात-दिन सबक़ ही ऐसा दिया जाता है। इनका विश्वास करना अच्छा नहीं है। इसलिये तू पहले से सँभल जा। कदाचित् तुझे यह ख़याल हो कि ये लोग तुझे नारी समझकर छोड़ देंगे, तो तू सख़्त ग़लती करती है। वह ज़माना गया कि जब स्त्रियों के साथ रू-रियायत का बरताव किया जाता था। आजकल ताजीरात हिंद और ज़ाब्ता फ़ौजदारी की तूती बोल रही है—आजकल ये ही हमारे धर्मशास्त्र हैं। मनुस्मृति का अब यहाँ मान नहीं है।

विचित्र वैद्य

निठुर भौंर के दंस सों, भए गाल पर घाव ;
चूमि लेत पीतम सदा, तिनको औषधि भाव ।

इन पीतमजी ने योरप (Europe) के डिप्लोमेटों को भी मात कर दिया। बेचारी भोली-भाली देवी को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करना ये खूब जानते हैं। ज़रा आपकी गुफ्तगू तो मुलाहिज़ा फ़रमाइए। आप फ़रमाते हैं—"ये भौंरे कैसे निठुर हैं। कपोलों पर इन्होंने ऐसी बेरहमी से डंक मारे हैं कि घाव हो गए हैं। रसना में रस (अमृत) रहता है। सो अपने गालों को मेरे सामने करो। मैं इन्हें चूम लेता हूँ। अभी मिनटों में सारा ज़हर उतर जायगा। यह एक अक्सीर दवा है।"

मालूम होता है कि पीतमजी को उनकी परोपकार-वृत्ति की पोल खोलनेवाला अभी कोई नहीं मिला है, वरना ये सारी हिकमत भूल जाते। दूसरों का इलाज करते-करते कभी कहीं ये खुद मर्ज़ मोल न ले लें। पीतमजी अच्छी तरह समझ लें कि डिप्लोमेसी हमेशा काम नहीं देती है। अंत में असफलता अवश्य होती है। और फिर बड़ी दुर्गति होती है। किंतु इस वक़्त पीतमजी हमारी नसीहत क्यों मानने लगे हैं। इस समय तो इनकी चालें ख़ूब चल रही हैं।

मुग्ध मधुप

कोमल सरस कपोल पर, तिल इमि शोभा पात ;
पा गुलाब कंटकरहित, रसिक मधुप लिपटात ।

सरस कोमल कपोल पर तिल इस प्रकार शोभा देता है, मानो कंटकविहीन गुलाब से रसिक भ्रमर लिपटा हुआ है ।

भौंरे बड़े रसिक होते हैं । रस के लिये काँटों की कोई परवा नहीं करते हैं । उनको उन काँटों से छिदने में ही मज़ा आता है । विदग्ध-हृदय पुरुष इसके साक्षी हैं । भ्रमर ने प्रेम के तत्त्व को समझ लिया है । वह काँटों से तो डरे ही क्या, मृत्यु तक से भय नहीं खाता है । प्रेमी पुरुषों का स्वभाव है कि जान पर खेलकर भी अपने प्रेम का परिचय देने से बाज़ नहीं आते । ये लोग विघ्न-बाधाओं से नहीं घबराते । किंतु भाग्य से, विना प्रयास किए ही यदि अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति हो जाय, तो और भी अच्छी बात है । हमारा रसिक भौंरा ऐसे ही भाग्यशाली जीवों में से है । इसे विना काँटोंवाला गुलाब मिल गया है । अच्छी तक़दीर खुली है । अब निश्चिंत होकर चुंबनालिंगन करे—दोनों हाथों से जी खोलकर रस लूटे ।

उसे चाहिए कि कवि को धन्यवाद दे कि जिनकी बदौलत उसे ऐसा सुख भोगने को मिला है। कवि महाशय ने प्रेमी जीवों के आराम का ख़ास तौर पर ख़याल रक्खा है।

मुक्त मुक्ता

सफल जनम तुअ जग भयो, बेसर मोती सेत ;
राधा अरु नँदलाल के, अधरन को रस लेत ।

हे बेसर के श्वेत मोती ! तेरा ही इस संसार में जन्म लेना सफल हुआ है, जो तू राधा और नँदलाल दोनों के अधरों के रस का पान करता है । जिस अधर-रस के लिये कृष्ण के सदृश योगीश्वर राधिकाजी के चरण-कमलों में सिर नवाते हैं, उनके चरणों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं और रूठ जाने पर घंटों उनको मनाते हैं, उसकी प्राप्ति विना प्रयास ही हो जाना बड़े सौभाग्य से ही संभव है। तिस पर भी तारीफ़ यह है कि अकेली राधिकाजी के अधरामृत का पान ही नहीं, हज़रत कृष्ण से भी नहीं चूकते हैं। बेचारे कृष्ण को तो यह कोरा ही रख देते हैं। जो कुछ रस कृष्ण पान करते हैं, उसको तो तुरंत ही यह उनके अधरों से चूस लेता है। फिर कृष्ण के पास कुछ नहीं रहता । कदाचित् यही कारण है कि कृष्णजी कभी तृप्त नहीं होते हैं। इस बेसर-मोती की वजह से ही उनको राधिकाजी की बार-बार ख़ुशामद करनी पड़ती है । यदि यह बेसर का मोती न होता, तो मनमोहन को इस तरह बार-बार राधिकाजी मान का डर न

दिखातीं। और न कृष्ण महाराज को ही इस तरह अनुनय-विनय करनी पड़ती। किंतु यह मोती ऐसा रक़ीब खड़ा हो गया है कि इसके कारण कृष्णजी की भी नाक में दम है।

इस बेसर के मोती की बिहारी किस तरह बड़ाई करते हैं, सो सुन लीजिए—

> अजौं तरयौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग ;
> नाक बास बेसर लह्यौ, बसि मुकुतन के संग ।

इस मोती को अच्छी मौज मिली—वैकुंठ का वास और अधरामृत-पान का आनंद !

प्रेम-पय-पान

सखी कह्यौ पय पीन को, हँसि बोली सुखदानि ;
रात पियो पिय-अधर-रस, वासों प्यास बुझानि ।

नायिका की सखी बड़ी चतुर थी । नायिका जब प्रातःकाल उठकर आई, तो वह उसके मुख पर के प्रस्वेद का कारण ताड़ गई । अतः वह नायिका से बोली कि पसीना सुखाकर ठंढा जल पी लो, जिससे शांति हो जाय । नायिका समझ गई कि सखी मामले तक पहुँच गई । अतः नायिका प्रौढ़ा तो थी ही, उसने सखी से उस बात को छिपाकर रखना उचित न समझा और हँसकर बोली कि रात पिय के अधरों का रस पान किया था, सो उससे प्यास बुझ गई । शीतल जल की अब आवश्यकता नहीं है । भला, जिसे प्यास बुझाने को अमृत मिले, वह पानी से प्यास क्यों बुझावेगी । पानी से प्यास बुझावें वे जिनके भाग्य में पिय के अधरामृत का पान नहीं लिखा है । नायिका, नायक के क्या, वास्तव में अपने ही अधरों का पान करती है । नायक रस लाया कहाँ से ? नायक ने नायिका से ही तो रस लिया था, सो नायिका ने फिर नायक से छीन लिया । फिर कभी मौक़ा पड़ेगा, तो नायक नायिका से छीन लेगा ।

इस बेचारे रस की तो आफ़त ही समझो। कभी यह इस बर्तन में डाला जाता है, तो कभी उस बर्तन में; लेकिन यह क़सूर इन रसराज का ही है। इन्हें सोच-समझकर इन नारियों के चक्कर में पड़ना था। इनसे अधिक संबंध रखने से किसकी दुर्गति नहीं होती?

बहुरंगी बिहारी

लखि बहुरंगी रूप पिय, राधा तहँ हँसि दीन ;
दंताभा पड़ि श्याम वपु, घन विद्युतयुत कीन ।

प्रेम-साम्राज्य के सम्राट् भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं को सुनकर आज किस सहृदय की आत्मा नहीं फड़क उठती। विविध प्रकार से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके प्रेम-रस का इन महाशय ने जो मज़ा चखाया था, आज उसको याद कर करके प्रेमियों के हृदय ललक उठते हैं। कभी गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा, तो कभी राधा के साथ वन-विहार; कभी प्रिया के संग झूला झूलना, तो कभी जल-विहार। यही नहीं, कभी-कभी तो इनको अद्भुत लीलाएँ रचने की सूझती। कभी-कभी आप रूप बदलकर प्रियाजी के पास जाते और उनको ख़ूब छकाते। परिणाम यह होता कि इन दोनों प्रेमियों का प्रेम अबाध्य रूप से दिन-दिन बढ़ता ही जाता।

इस दोहे में नटवर व्रजबिहारी की इसी बहुरंगी लीला का वर्णन है। आपके मन में आई कि वेश बदलकर प्रिया के पास चलें। वेश ऐसा सजाया, चाल-ढाल ऐसी बदली कि किसी प्रकार से पोल न खुल जाय। परंतु क्या आग भी कभी कपड़े

में छिपाए छिप सकती है ? क्या सूर्य भी कहीं बादलों में छिप सकता है ? आखिर पोल खुल ही गई। सब कुछ छिपा लिया, किंतु उन मदभरी, रसीली आँखों और उस घनश्याम तथा आभापूर्ण वर्ण को कैसे छिपाते ?

राधिकाजी ताड़ गईं। हृदय में, प्रेम और विस्मय में झगड़ा छिड़ गया। वह अपने हृदय के इन भावों को न छिपा सकीं। बहुत कोशिश करने पर भी हँसी निकल पड़ी। इसी समय एक दर्शनीय दृश्य उपस्थित हुआ। वह दृश्य केवल अनुभवनीय ही है। उसका वर्णन करना सर्वथा सामर्थ्य की सीमा के बाहर है। हँसने से जो राधाजी का मुखारविंद खिला, तो उसमें से मोती के समान सफ़ेद दाँत चमकने लगे। उनकी आभा की किरणों ने श्रीकृष्ण के घन-सदृश श्याम शरीर पर पड़कर एक अच्छा दृश्य दिखलाया। घन पर रह-रहकर विद्युत् चमकने लगी। अहा! उस समय क्या ही मजा रहा होगा; पाठक अनुभव कर लें।

शुभ्र सीप

हँसत राधिका दंतद्युति, मोहन मनहिं लुभात ;

मनहुँ अरुन दाख्यों फटी, किधुं फटि सीपि सुहात ।

हम यह नहीं बता सकते कि राधाजी कौन-से मौक़े पर हँसी हैं, क्योंकि उनका हँसमुख मुखड़ा तो नित्य हँसता-सा ही जान पड़ता है । परंतु यहाँ कुछ-कुछ ऐसा मालूम होता है कि मोहन उनके मन को मोहने के लिये उन्हें गुदगुदा रहे हैं, और दूसरों को मोहने जाकर उनके खिलखिलाकर हँसने पर खुद ही मोहित हो गए हैं । हम उनको मनमोहन न कहकर मनमोहित कहें, तो अच्छा हो ।

लोग कहते हैं कि मन देने से मन मिलता है, परंतु यहाँ तो पहले मन लेकर ही मन दिया है । लोगों को यह मालूम नहीं कि पहले एक प्रेमी मन देता होगा, तभी न दूसरा लेता होगा । यदि दोनों ही पहले से ही अपना-अपना मन दे दें, तो लेनेवाला तीसरा ही चाहिए; नहीं तो वे मन बीच ही में टकराकर चकना-चूर हो जायँगे । प्रेम की हार में जीत होती है, इसके अनुसार राधाजी ने पहले हार की हँसी हँसकर कृष्ण के मन को जीत लिया । बस, एक क़हक़हे में गुणग्राहकजो खुद ही बिनदाम

बिक गए। नहीं-नहीं, बिनदाम तो नहीं बिके, उस फटी सीप में अमूल्य चमकदार मोतियों की लड़ी को देखकर आपको लोभ हो आया, अथवा पके अनार को फटते देखकर आपको उसका अनुपम रस चखने की मन में आई। यह क्या प्रेमनाथ! प्रेम में भी स्वार्थ और लोभ!

रसना के रस

षट रस रसना चाखिके, नवरस देत चखाय ;
अधर अधररस पान करि, रस ही देत पिलाय ।

कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण ये छः रस चखकर, यह रसना शृंगारादि नवरसों का रसास्वादन करा देती है । उदारता का अनुपम उदाहरण है । छः के बदले नव देना कुछ छोटी-मोटी बात नहीं है । फिर 'षट्रस विधि की सृष्टि में' के अनुसार छः से ज्यादा रस न होने पर भी वह नव-रस प्रदान करती है । भलाई का बदला किसी को चुकाना हो, तो इसी तरह चुकाए । यदि इतना न हो सके, तो कम-से-कम अधरों की तरह, जितना रस पान करे, उतना तो पिला ही देना चाहिए । बड़े प्रेम के साथ इस ढंग से पिलाना चाहिए कि पीनेवाले की प्यास न बुझने पर भी तृप्ति हो जाय, और वह यही समझे कि मैं ही नफ़े में रहा हूँ ।

अब बहुत-से ऐसे भी हैं, जो केवल लेना ही जानते हैं और देने का नाम तक नहीं लेते । नाक ही को ले लीजिए । आप संसार के सुंदर-से-सुंदर और सुगंधित-से-सुगंधित सुमनों की सुवास सूँघकर बदले में कुछ नहीं सुँघाते । पाठक कहेंगे—

"प्रिया के श्वास में सुगंध का आभास तो अवश्य रहता है", परंतु यह आमोद उनके मुख-कमल से निकलनेवाले शीतल श्वास में ही होता है।

अब कान की ज़रा और सुन लीजिए। आप खिड़की के एक कोने में जमकर रसना के सुनाए हुए नवरसों को सुन लेते हैं। फिर सुनाने की तो बात ही दूर रही। सुनानेवाले को उत्साह तक नहीं देना जानते। आप बड़े कृतघ्न और सूम हैं, इसीलिये तो कविग्रों ने आपको अपनी कविता में बहुत कम स्थान दिया है। आपका बहुत कम गुणगान किया है।

सच्चा संदेह

गालन कहँ नवनीत कहि, चिबुकहिं आम बताहि ;
पके दाख अधरन समुझि, माधो चाखन चाहि ।

धन्य हो माधव ! तुम्हारी महिमा कौन कह सकता है । हे मुरलीधर, तुम कभी तो ऐसे सुकुमार बन जाते हो कि मुरली तक नहीं सँभाल सकते, और कभी गिरिधारी बनकर पर्वत-का-पर्वत कनिष्ठिका पर धारण कर लेते हो। हे जगन्नाथ, तुम जगत् की रक्षा करते-करते, थककर गोपीनाथ बन बैठते हो; कभी पुरुषोत्तम बनकर समस्त संसार को उपदेश देते हो, तो कभी गोपाल बन-कर ग्वालों की तरह उनका-सा आचरण करते हो । तुम्हारे जिस मुकुट की एक झलक के लिये देवर्षि तक तरसते हैं, वह ही तुम्हारा मुकुट मानिनी राधाजी के चरणों में यों ही पड़ा लुढ़का करता है । तुम सबसे बड़े दाता और सबसे बड़े याचक हो। तुम सबसे ज़्यादा शूरवीर और सबसे बढ़कर कायर हो। गीता का गान गानेवाले तुम्हीं और गोपियों का गोरस हरण करनेवाले भी तुम्हीं हो । तुम्हारा कहाँ तक बखान करें। त्रिभुवन में ऐसी कोई बात नहीं, जो तुममें न हो । तुम प्रकृति के प्रवर्तक जो ठहरे । तुम सबसे बढ़कर समझदार और

सर्वज्ञ तो हो ही ; हम ज़रा तुम्हारे भोलेपन का भी बखान करना चाहते हैं।

गोपियों के गालों को माखन, उनके चिबुकों को आम और उनके ओठों को पके दाख बताकर आप चखना चाहते हैं। वे बेचारी भोली-भाली ललनाएँ तुम्हारे इस रहस्यभरे भोलेपन को क्या जानें ? बेचारी सोचती होंगी—"लल्लूजी बड़े भोले हैं और इन बातों से अभी अनभिज्ञ हैं। अपना क्या जाता है ? इनका हठ पूरा हो जाने दो", परंतु वे यह नहीं जानतीं कि इस चाखन में चुंबन छिपा है, जो चतुर गोपियों के चंचल चित्त को चुंबक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। परंतु इस नटखट, नटवर नंदनंदन को 'ना' कहें भी, तो कैसे कहें ? यदि कहीं से दाख या आम मिल जायँ तब तो उसे दे भी दें ; परंतु वह तो ऐसे समय में इनको चाखना चाहता है, जब कि इन फलों का समय ही नहीं है। यदि माखन कहीं से लाकर चखाएँ भी, तो हज़रत फ़रमाते होंगे—"नहीं, यह माखन इतना साफ़, चिकना और स्वादिष्ठ नहीं है, इसलिये मैं तो तुम्हारे इसी पहलेवाले माखन को चखूँगा।" फिर बेचारी व्रज-बालाएँ कहाँ तक बहानेबाज़ियाँ करके बच सकती हैं ?

इंदु की ईर्ष्या

प्यारी को मुख देखिकै, परो डाह के फंद ;
याही सों नित दूबरो, होत बापुरो चंद ।

हज़रत चंद्र तो बुरे फंदे में फँसे । किसी नायिका विशेष के सुंदर मुख को देखकर डाह के मर्ज़ में मुब्तिला हो गए । दर्पण उठाकर बार-बार मुख देखते हैं । नायिका के सौंदर्य के मुक़ाबले में अपने सौंदर्य को फीका पाकर डाह से जले जा रहे हैं । बुरे चक्कर में पड़ गए हैं । "चिता भली चिंता बुरी ।" इसी चिंता के कारण बापुरा चंद्र नित दुबला हो रहा है । पाठको ! बन सके तो शीघ्र कोई इलाज करो । रोग जो कहीं असाध्य हो गया, तो हमें भी मुसीबत उठानी पड़ेगी । जो कहीं इसी चिंता में चंद्र इस संसार से चल बसे, तो बस समझ लो, संसार में अँधेरा छा ज़ायगा । चाँदनी रातों के लिये फिर रोते ही रह जाओगे । परमात्मा न करे, जो कहीं इस तरह की नौबत पेश आ जाय, तो हमें भी बोरिया-बिसतरा बाँधकर चंद्र के साथ कूच करने को तैयार रहना चाहिए । भला इनके बिना तो यह सारा संसार शून्य प्रतीत होगा ।

सुनते हैं कि विलायत में बड़े-बड़े चोर रहते हैं । किसी से

मिल-जुलकर कोशिश करिएगा कि विलायत के किसी नामी चोर के ज़रिए से इन प्यारीजी के रूप को चुरा लिया जाय, और वह चंद्र के सुपुर्द किया जाय। बड़ा भारी उपकार होगा। इधर तो चंद्रदेव की जान बचेगी, उधर दुनिया के सर से एक बहुत बड़ी बला टल जायगी।

कोप का कारण

राहु न ग्रस सकि चंद को, बिधि सों बैठो कोपि ;
तियमुख पटतर खीनता, लखि न सकहि मन गोपि ।

चंद्र सौंदर्य-जगत् का जीवन-प्राण है । वह तो विधि की कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है । अपनी कारीगरी का सबको अभिमान होता है और अपनी बनाई हुई सुंदर कृति सबको प्यारी लगती है । फिर भला चंद्र विधि को प्रिय क्यों न होगा ? उन्होंने तो इसकी रचना में अपनी प्रतिभा का ख़ूब उपयोग किया होगा । तभी तो चीज़ भी ऐसी सुंदर बनी, जो सुंदर वस्तुओं में सबसे उत्कृष्ट नहीं, तो उनमें से एक अवश्य है । अतः अगर इस प्रिय वस्तु पर दुःख पड़े, तो विधि से सहन न हो सकेगा । परंतु विधि तो सृष्टि के आधार, कर्ता-धर्ता ही ठहरे । किसकी मजाल है कि उनकी चीज़ पर आँख गड़ावे ? तब तो यह स्पष्ट है कि राहु द्वारा चंद्र के ग्रसे जानेवाली किंवदंती निस्सार और बेसिर-पैर की समझी जानी चाहिए । भला राहु ऐसे तुच्छ जीव की क्या मजाल, जो सृष्टि के स्रष्टा विधि की, जिनका लोहा सब मानते हैं, चीज़ को दुख देने का दुस्साहस करता । यह तो कल्पना के भी

बाहर है। तब तो काल्पनिकों की ऊटपटाँग कथाओं ने धोखा दिया।

यह तो ठीक है, किंतु हम जो चंद्र महोदय को कभी-कभी ग़ायब और कभी-कभी विकृत रूप में देखते हैं, इस शंका का समाधान कैसे होगा ? लीजिए, कविजी ने इसी का समाधान कर दिया है, जो मन में सोलहों आने ठीक जँच जाता है। वह यह है कि चंद्र का राहु द्वारा ग्रसा जाना निर्मूल है। यह चंद्र तो और-और मनुष्यों की तरह कभी-कभी कोप में आकर अपने स्वामी विधिजी से रूठ जाता है। रूठता है इसलिये कि संसार की सुंदरियों की मुख-द्युति अपने से भी बढ़कर देख, इसके मन में ईर्ष्या-भाव पैदा होता है। पाठक! ज़रा सोचने पर मालूम होगा कि इस डाह का आंतरिक कारण क्या है। कारण यह है कि जहाँ चंद्र को पक्ष के अनुसार क्षीणकला होने, और क्रमशः घटने-बढ़ने का असाध्य रोग लगा हुआ है, वहाँ सुंदरियों के मुखचंद्र की आभारूपी कला घटने के बजाय दिन-दिन बढ़ती ही है। वहाँ तो घटने का नाम तक नहीं है। वहाँ तो 'नितप्रति पून्यौं ही रहै।' दूसरे, चंद्र में कलंक है, पर तियमुखचंद्र में कलंक का नाम नहीं। यह हीनता भला मानियों में अग्रगण्य चंद्र से कब सही जा सकती थी। अब कोप किस पर करें। उसी विधि पर ही न, जिसने कहने को

तो दोनों को पक्षपात रहित होकर बनाया, पर किया वास्तव में सरासर अन्याय कि स्त्री को चंद्र की अपेक्षा यह विशेष गुण दे दिया।

भला मान की आन पर बलिदान होनेवाले सुधांशु इस गर्व-खंडन को देख, कैसे चुप रहते ? अतः जी में सोचा कि विधि को इस लापरवाही का मज़ा चखाना चाहिए। आपने आजकल के सभ्य-संसार के कौंसिलरों की तरह मानहानि के मौक़े पर पदत्याग करना ही उचित समझा, जिससे समस्त संसार सहित विधाताजी को भी यह तो मालूम हो जाय कि चंद्र महोदय भी कोई चीज़ हैं; उनका अपमान उनको कदापि नहीं करना चाहिए। अब भी पश्चात्ताप करके उनको क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। परंतु विधिजी क्या करें ? उनकी तो जान आफ़त में है। वे क्या जवाब दें ? उन्होंने जान-बूझकर तो यह धोखेबाज़ी की ही नहीं थी, जो दोषी ठहरते। सुंदरियों में स्वभावतः ही मोहिनी शक्ति होती है; वही शक्ति उन पर भी काम कर गई। उनको यह ज्ञान तक न हुआ कि उन्होंने क्या ग़ज़ब कर डाला। छवि-रचना करते-करते ही पागल की तरह बिना सोचे-विचारे यह विशेष गुण स्त्रियों को दे दिया। यह हुआ चंद्रग्रहण का असली रहस्य।

मयंकों की मानहानि

चारु चमक मुखचंद की, देखि स्याम पट ओटि ;
ऐसी हिय में बस गई, भात न शशि मुहिं कोटि ।

नायिका श्याम चीर ओढ़े हुए है । उसकी ओट में से उसके मुखचंद्र की चारु चमक मेरे हिय में ऐसी समा गई है कि एक-दो नहीं, करोड़ों चंद्रमा भी उसके मुख के मुक़ाबले में मुझे अच्छे नहीं लगते हैं ।

करोड़ों चंद्र भी अच्छे न लगें, तो कोई अचरज की बात नहीं है, क्योंकि मुखचंद्र की कुछ निराली ही शोभा है; चंद्र वास्तव में उसे नहीं पहुँच सकता । श्याम पट है, वही श्याम घन है । उसकी ओट में से नायिका का मुख जो दीख पड़ता है, वही चंद्रमा है । किंतु यह मुखचंद्र शशि से अधिक शोभाशाली है, क्योंकि यह निष्कलंक है । फिर भला इसके सामने कलंक-पूर्ण चंद्रमा, चाहे करोड़ों ही क्यों न हों, कैसे ठहर सकते हैं ? आप क्या नहीं जानते हैं, "प्यारी को बनाय विधि धोए हाथ, ताको रंग जमि भयो चंद्र, हाथ झारे भए तारे हैं ।" तब बापुरा चंद्र इस नायिका के मुख की समता कैसे कर सकता है ? क्या ही अच्छा होता, यदि विधि

आकाश में कोई ऐसा ही निष्कलंक चंद्र बना देता, जिससे सबको ऐसा अनुपम सौंदर्य देखने को मिलता।

नभ का नीलम

नीले पट लखि स्याम हिय, राधा मुख इमि सोहि;
निलम झरोखे झाँकि मनु, चंद जमुन जल जोहि।

इधर राधाजी ने नीली साड़ी पहनी है। साड़ी पर ज़री के तारे जड़े हुए जान पड़ते हैं। उस साड़ी पर उनका मुख ताराओं से झिलमिलाते हुए आकाश में चंद्रमा की तरह प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण का रंग नीला है ही; उनका विशाल वक्षः-स्थल नीले जल से भरे हुए यमुना के चौड़े पाट की तरह जान पड़ता है। राधाजी प्रेम-पूर्वक उनके श्याम हृदय को देख रही हैं। उधर चाँदनी खिली हुई है। निशा-नायिका ने तारा-जटित नील गगन को ही साड़ी की तरह पहना है। चंद्र ही निशा का मुख है। वह अपने प्रिय यमुना के नील जलरूपी हृदय में झाँक रही है। या यों कहिए कि इधर तो ज़री के तारारूपी नगों से जड़ी हुई साड़ीरूपी नीलम के झरोखे से राधा का मुखचंद्र कृष्ण के हृदय में और उधर तारारूपी नगों से जटित आकाश-रूपी नीलम के झरोखे से चंद्र यमुना-जल में झाँक रहे हैं। यही सब दृश्य हमारे कवि की कल्पना-चक्षु के सामने घूम रहे होंगे। उसी समय आपने यह अनूठी उत्प्रेक्षा की होगी।

आप कहते हैं—"नीले रंग की साड़ी में से श्याम के हृदय को देखती हुई राधाजी का मुख ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाशरूपी नीलम के झरोखे से झाँककर चंद्रमा यमुना के जल में प्रतिबिंबित होता हो।" राधाजी का नीला घूँघट ही नीलम का झरोखा माना गया है। ऐसे-ऐसे सुंदर भवनों का ऐसा ही नगजटित नीलम का झरोखा होना चाहिए। देखा कविजी को आपने! नीलम को नभ में चढ़ाकर छोड़ा। पता नहीं कविजी किस चीज़ के झरोखे से झाँककर कौन-से जल में अपना प्रतिबिंब देखते हैं? हाँ, खयाल आया, आप शायद ज्ञान-रूपी नीलम के झरोखे से झाँककर कल्पनारूपी जल में अपना प्रतिभारूपी प्रतिबिंब देखते होंगे। ख़ैर, हम भी आज से इस प्रकार देखना सीखेंगे।

सुंदर सुमन

धड़ बेली मुख सुमनवर, ग्रीवा नलिका भांत ;
कारे कोमल कच मधुप, नाईं शोभा पात ।

नायिका का धड़ तो सुंदर लता है। उसका मुख-मंडल सुंदर पुष्प है। उसकी ग्रीवा उस मुखरूपी पुष्प की सुभग नलिका है। उसके काले और कोमल केश इस प्रकार शोभा देते हैं, मानो पुष्प पर भौंरे बैठे हैं।

सचमुच बड़ा ही सुंदर सुमन है। यह पुष्प तो कवि की प्रेम-वाटिका का मालूम होता है। क्या अच्छा होता, यदि विधि हमको इस वाटिका की बुलबुल बना देता। सुंदर-सुंदर सुमनों के सौंदर्य का ख़ूब निरीक्षण किया करते। पुष्पों को मीठे-मीठे तराने सुनाया करते, और इस प्रकार ख़ुद शाद होते और उन सुमनों को शाद करते। उनके द्वारा सौंदर्योपासना का पाठ भी पढ़ लेते।

लट की लपेट

तिय कुच मलय पहार पै, गल चंदन तरु जान;
लट कारी ह्वै के मनहु, नागिन लिपटीं आन।

स्त्री के कुच ही मलयाचल पर्वतावली के दो उत्तम शृंग हैं। उन पर कामिनी का चंदनवर्ण का कलितकंठ ऐसा प्रतीत होता है, मानो चंदन का वृक्ष खड़ा हो। इसी को स्पर्श करती हुई उसकी काली, टेढ़ी और लंबी लटें ऐसी मालूम होती हैं, मानो नागिनें आ लिपटी हैं।

कहिए, कैसा दृश्य रहा? सच तो यह है कि बहुत थोड़े भाग्यशाली पुरुषों को यह दृश्यावली देखने को मिलती है। और उन थोड़ों में भी कई ऐसे होते हैं, जो इस दृश्य को देखकर भी दृष्टि को पवित्र नहीं करते हैं। वे जड़-हृदय होते हैं। अतः कविजी ने बड़ी कृपा कर सर्वसाधारण रसिकों के लिये, जिनको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, परंतु जो हृदय से प्रेमी हैं, यह उसी के समान दृश्य दिखला दिया है, ताकि जब तब वे अपनी अंतरात्मा के पट पर इसका चित्रण कर प्राकृतिक सौंदर्य का-सा ही मज़ा उठावें। कहते हैं कि मलयाचल पर चंदन-वृक्ष बहुत हैं। उनकी विशेषता यह है कि साँप उनकी डालियों पर

लिपटे रहते हैं। यह उन वृक्षों की प्राकृतिक शीतलता और सुगंध के ही कारण होता है। नहीं तो भला साँप-जैसा दुष्ट जंतु किसका साभी हो सकता है ? वह तो दूध पिलानेवाले अपने स्वामी पर भी मौक़ा पाकर चोट कर देता है। उसकी भी आन नहीं मानता। यह तो चंदन की शीतलता और सौरभ की ही शक्ति है कि उस शैतान की शठता को शांत कर उसके स्वभाव को भी भुला देती है।

यही हाल है नायिका की लटों का। वे भी तो चोट करने में कुछ सर्प से कम नहीं हैं। उनको तो देखकर ही प्रेमी अपने आप मरने लगते हैं। परंतु देखिए, इन्हीं लटों ने नायिका के गले के संसर्ग से अपने दुष्ट स्वभाव को भुला दिया है। नायिका के गले की सुघरता, कोमलता और जवानी में अंग से निकलनेवाली सुगंध से लटें मुग्ध हो गईं और उससे जा लिपटी हैं। समय-समय पर आनंद-नृत्य कर-करके अपने हर्ष को प्रकट करने लगी हैं। पाठक, अब आपको इन नागिनों से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि जब तक प्रिया के चंदन-वृक्षरूपी कंठ से इन लट-नागिनों का संबंध रहेगा, तब तक इनका दुष्ट स्वभाव प्रकट नहो सकेगा।

प्रेम की प्रवीणता

रात गहन वन भँवत लखि, पथिकनि प्रेम प्रबीन ;
कुच गिरि शृंग उतंग पै, जुग मनि जनु धरि दीन ।

इस वन में कौन पथिक नहीं भटका ? क्या किसी ने इसका पार भी पाया ? इसके अंदर प्रवेश करके क्या बहुतों ने निकलने की व्यर्थ चेष्टा न की ? कवि कविता कर हारे, परंतु—'जाको वर्णन करि थके, शारद शेष महेश'—उसका भला वे कैसे वर्णन करते ? चितेरों की तो कुछ न चली। वे इस वन को चित्रण करने बैठ खुद ही चित्र बन गए, या चंचलचित्त होकर चुप रहे । सच है, इस वन के चित्र को चित्रित करके—'भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।' जिस वन के हाथियों की मदमाती चाल की समता सुंदरवन के हाथी भी नहीं पा सके; जिसमें निवास करनेवाले सिंहों की कटि के काट को हिमालय की तराई में रहनेवाले सिंह तक तरसते हैं; जहाँ मानसरोवर के हंस मौजूद हैं; जहाँ शुक, पिक, खंजन, कपोत इत्यादि पक्षी; मीन इत्यादि जलचर; सर्प-सर्पिणी इत्यादि थलचर नित्यप्रति निवास करते हैं; जहाँ कभी न कुम्हलानेवाले कमलों तथा अन्यान्य फूलों पर

रात-दिन भ्रमर मँड़राते रहते हैं; जहाँ काली कस्तूरी के मद में मस्त मृग अन्यान्य वन के निवासी मानी मृगों का मान भंग कर देते हैं; जहाँ कदली, चंपा, रसाल, चंदन इत्यादि वृक्षों के घने कुंज, सोनजुही, चमेली, लाजवंती इत्यादि लताओं से छाए हुए तथा गुलाब, अनार, अंगूर इत्यादि पौदों से घिरे हुए हैं; जहाँ अमृत, वारुणी, शंख, चंद्र, ऐरावत, धनुष इत्यादि समुद्र से निकले हुए रत्न तक मौजूद हैं; जहाँ अनेक प्रकार के टेढ़े-मेढ़े नदी और नाले हैं; अथाह कूप व तालाब हैं; जहाँ पहाड़ों में अगम दर्रे और घाटियाँ हैं; जहाँ कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वत से ज्वाला निकलकर सबको जलाती है; तूफ़ान चलते रहते हैं; वर्षा होती रहती है; जहाँ मतवाले मीणों और डरावने डाकुओं का डर है और जहाँ बैठे हुए शिकारी, जानवरों का शिकार न करके बेचारे भूले-भटके बटोहियों का ही शिकार खेलते हैं। भला ऐसे वन में भ्रमण करके किसको भय-भ्रम नहीं होता। फिर जहाँ पहले से ही अंधकार है, वहाँ रात के घोर अंधकार में चलनेवाले थके-माँदे पथिकों की मुसीबत का तो कहना ही क्या है!

यह आश्चर्यजनक जंगल प्रेम-नामक राजा के राज्य में है। प्रेमदेव बड़े बुद्धिमान हैं और प्रजा की रक्षा करने में तत्पर जान पड़ते हैं। देखो, झट उन्होंने कुचरूपी पर्वतों के ऊँचे

शृंगों को उपयुक्त स्थान समझकर, उन पर, भूलकर भटकनेवाले राहगीरों को राह दिखाने के लिये दूर-दूर तक प्रकाश फैलानेवाली दो मणियाँ रख ही दीं। अब भी यदि पथिकों को पथ न मिला तो उनके दुर्भाग्य का दोष है।

मदन का मोह

कुच बीलहिं माली मदन, निशि में तोरन चाहि ;
बीलपत्र शिव सिर चढ़त, समुझि हिए सकुचाहि ।

हज़रत मदन माली का वेश बनाकर रात के समय चोरों की तरह कुचरूपी बील-फल को तोड़ने जाते हैं। परंतु जब यह ख़याल होता है कि यह उसी वृक्ष के फल हैं जिसके पत्ते श्रीमहादेवजी के सिर पर चढ़ते हैं, तब उन फलों पर शंकर की कृपा समझकर और 'मदन-दहन' की याद करके, नानी याद आने लगती है, और पेट में छठी का दूध तक नहीं पचता। हृदय में बड़ा भय और संकोच होता है ; परंतु आप ठहरे चोरों और डकैतों के सरताज—भला इतने ऊँचे टाइटिल होल्डर होकर कहीं काम में विना हाथ डाले रह सकते हैं। उन्हें चाहे सफलता हो या न हो, परंतु पहले ही हिम्मत हार देने से उनकी सात पीढ़ी तक लज्जित न हो जायँ। मन में लालच भी है, और यह जानकर कि रात्रि में माली के वेश में उन्हें कौन पहचानेगा, कुछ धैर्य भी है। लो! आपने हिम्मत करके ज्यों-त्यों हाथ तो बढ़ा ही दिया। परंतु हुए आख़िर निराश ही; शिवजी की कृपा से बील तो नहीं टूटा, किंतु मनसिज का

मन ही टूटा। पहले ही यदि यह सोच लेता कि महादेव-जैसे त्रिकालज्ञ को धोखा देना असंभव है, तो क्यों इतना दुःख उठाता। परंतु वाह-वाह! बंभोले भी बड़े कृपालु हैं; उन्होंने अपने कृपा-पात्र बील-फलों पर मदन का इतना मोह देखकर उसे फलों को तोड़न-क्रिया में ही इतना अनुपम रस प्रदान कर दिया कि उसे उन्हें तोड़ने की इच्छा तक न रही। वह नित्य उन्हें देखकर ही अखंड आनंद का अनुभव करने लगा। वह बील-फल का बड़ा शौक़ीन मालूम होता है, नहीं तो उनके पीछे अपनी जान तक जोखिम में क्यों डालता।

पाठक! यदि विश्वंभर को प्रसन्न रखना है, तो आप इन फलों को तोड़ने का कभी व्यर्थ प्रयास न करें; जहाँ तक हो सके इनसे बचकर ही चलें—इन्हें देखें तक नहीं—नहीं तो, लेने के देने पड़ जायँगे। शंकर हमेशा तो भंग के नशे में रहते ही नहीं, जो मदन की तरह आपको भी माफ़ कर देंगे।

प्रेम-पयस्विनी

पिय के पावन प्रेम की, बहत बीच जलधार ;
उरज ताहि के मनहु द्वै, ऊँचे अगम करार ।

कविजी के कल्पना-राज्य की भूमि को उर्वरा बनाती हुई, सावन-भादों की घरघराहट करती हुई, गहरी नदी बह रही है। इसका नाम प्रेम-नद है । और-और नदियाँ वर्षा ऋतु में मैली होकर रजःस्वला हो जाती हैं; परंतु यह नदी तो 'पिय के पावन प्रेम-जल' से ही बारहों महीने भरी रहती है । ज्यों-ज्यों जलवृद्धि होती है, त्यों-त्यों शुद्धि होती जाती है । इस प्रेम-महानद से गहरी नदी शायद ही संसार में और कोई हो । यह जल से ओतप्रोत भरी रहने पर भी निर्मल है । मल तो इसे छू तक नहीं गया। चलिए पाठक ! हम भी इस नदी में स्नान करके अपने पापों को बहा दें, और कवि को धन्यवाद दें । यह तो मानी हुई बात है कि नदी जितनी ही ज्यादा तेज़ चलेगी, उतना ही करारों को काट-काटकर ऊँचा बनाए जायगी । फिर यह प्रेम-नदी का प्रवाह तो ऐसे ऊँचे करारे बनाता होगा, जो बेचारे दूसरे लोगों को तो क्या—'कांवनामप्यगम्यम्' हैं ।

नायिका के ऊँचे उठे हुए कुच ही मानों इस नदी के दो

बहुत ही ऊँचे और अगम करारे हैं, जिनके बीच में से होकर कलकल करती हुई, पति के पावन प्रेम से भरी हुई प्रेम-पयस्विनी बह रही है । यह जिसके प्रेम की नदी है, वही इसमें स्नान कर सकता है ; परंतु कम-से-कम दर्शनानंद और उसकी कलकल ध्वनि के श्रवणानंद से तो हम भी वंचित न रक्खे जायँगे। ख़ैर, इतना ही बहुत है । हमें थोड़े में ही संतोष कर लेना चाहिए। चलो हम संतोषामृत ही पान करके अपनी प्रेम-पिपासा शांत कर लें ।

देखिए पाठक, हठ न कीजिए, उन करारों तक पहुँचना तो दूर रहा, उनको देखना तक टेढ़ी खीर है। फिर जो कहीं उधर दृष्टि पड़ गई, तो हम खिंचकर उस नदी में जा गिरेंगे। आपने पहले तैरना तो सीख लिया है न ? परंतु वहाँ तो बड़े-बड़े तैराकों तक की ताक़त काम नहीं करती। फिर हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है ? अतः हमें उचित है कि हम इस नज़ारे से दूर ही रहें।

आश्रयहीन के आधार

तिय छबि छीर अपार में, बूड़त मन मँझधार ;
तलफत वाको देखि विधि, किए कुचनि आधार ।

दस इंद्रियों से शरीर बना है, और मन इंद्रियों का राजा है। फिर, यदि राजा ही डूब गया, तो प्रजा के डूबने में क्या बाक़ी रहा ? प्रजा-पति भांडे घड़-घड़कर छोड़ता है; परंतु वे उसी के बनाए हुए, स्त्री के शोभारूपी सागर में डूब जाते हैं। यह देखकर वह हैरान हुआ, परंतु दोनों में से एक को भी उसने नष्ट न किया, क्योंकि दोनों ही उसकी सृष्टि थीं। करोड़ों इसी तरह से तड़फ-तड़फकर इस अपार छवि-सागर की तरल-तरंगों के बीच में डूबने लगे, परंतु विधि को कोई उपाय नहीं सूझा । मालूम होता है, उन्होंने अंत में हारकर कामदेव की सहायता ली । काम महाराज तो पहले से ही पुराने घाघ थे ही, आपने तुरंत राय दी होगी—"इस समुद्र में दो ऐसे आधारस्वरूप पर्वत बना दीजिए, जिनसे इसका सौंदर्य भी बढ़े, और बेचारे ग़रीबों के मन भी न डूबें।" विधाताजी आपकी चाल में आ गए और कुच-रूपी दो आधार बना दिए ; परंतु यह नहीं जाना कि यह

गुरु घंटाल मदनराज की चाल है, जिससे पहले मुश्किल से डूबनेवाले मन अब सहज ही में डूब जायँगे। पहले इस समुद्र से दूर भागनेवाले मन भी अब इन आधारों को देखकर मोहवश चक्कर में आ जाते हैं। बेचारे ब्रह्मा की समझ में कुछ नहीं आया; किया तो भले के वास्ते, हो गया और भी बुरा।

प्रेम-पयोधर

बिन कंचुकि लगि स्याम हिय, राधा मो मन भाहि ;
नेहनील नद कनक घट, उलटि भरति जनु जाहि ।

राधा माधव कहीं एकांत में मिले हैं। लज्जा निवारणार्थ अथवा प्रेमावेश में राधाजी हरि के हृदय से लिपट गई हैं। उसी समय की उनकी निराली कुच-शोभा का वर्णन कवि ने किया है।

क्या कभी आपने किसी को यमुना में स्वर्ण-घट भरते देखा है ? यदि नहीं, तो थोड़ी देर के लिये कल्पना ही कर लीजिए। घनश्याम का श्याम हृदय बड़ा विशाल है, और यमुना के पाट की भाँति मालूम होता है; अतः उसमें रस रहना प्राकृतिक ही है। कवि ने उसे स्नेहरूपी नीले जल का नद ही माना है। राधाजी के कंचुकीरहित कुच, रंग, चमक-दमक और आकार से, सोने के बड़े-बड़े घड़े ही प्रतीत होते हैं। कुछ-कुछ उलटकर घड़े का मुख जल में लगाने से घड़ा भरा जाता है। राधाजी भी प्रेम-मद में मस्त होकर कुछ झुककर छबीले छैल की छाती से लगी हैं। बस देखनेवालों को प्रत्यक्ष यही मालूम होता है, मानों वे अपने कुचरूपी कनक-कलस कुछ-कुछ उलटकर, कृष्ण

के प्रेमरूपी नीले जल से भरे हुए हृदयरूपी नद में भरती जा रही हैं।

परंतु हमें तो यह आश्चर्य है कि राधाजी को प्रेम-जल भरने की क्या आवश्यकता थी ! स्नेह-सलिल तो स्वतः उमड़कर उनके कुच-कुंभों में भर आया होगा। और वे उसको नटवर के नेह-नद में अपने घड़े उलटकर मिला रही होंगी।

राधाजी को प्रेम-जल में घड़े भरते देखकर हमारे कविजी को भी ईर्ष्या हो आई, और उन्होंने भी कल्पनारूपी सागर को अपने दोहेरूपी गागर में भर दिखाया। फिर कहाँ तो राधाजी का सागर में गागर भरना, और कहाँ हमारे कविजी का गागर में सागर भर दिखाना !

कालिंदी में कनक-कलश

नील कंचुकी ओट तिय, कुच इमि सोभा पाहिं ;
विमल यमुनजल कनक-घट, कछु-कछु बूड़त जाहिं ।

प्रिया की नीले रंग की कंचुकी ही मानो यमुना का निर्मल और नीला जल है। उस कंचुकी में से उसके सुंदर, सुघर और चमकीले कुच इस प्रकार शोभा देते हैं, मानों जल भरते समय किसी स्त्री के हाथों से छूटकर सोने के घड़े यमुना-जल में कुछ-कुछ डूबते जा रहे हैं।

मगर पाठको ! इन घड़ों के भरोसे आप नारी के नेह-रूपी नद में न कूद पड़ना, आप देख चुके हैं कि ये डूबते हुए घड़े हैं। अतः आपको भी साथ ले डूबेंगे। आप इनका सहारा तकते हैं। मगर वे क्या सहारा देंगे, उन खुद की जान आफ़त में है। वे तो खुद डूबते हुए की नाईं दूसरों का सहारा तक रहे हैं।

नयन-नैया

सागर रूप अपार में, नयन-नाव टकराहि ;
कुचगिरि पै दीपक वरत, तऊ ताहि दिशि जाहि ।

स्त्री का सौंदर्य अपार और अगाध सागर के सदृश है। इसकी शोभारूपी तरल तरंगों में पड़कर रसिकों की नयन-रूपी नाव इधर से उधर टक्कर खाती फिरती है। समुद्र में जगह-जगह चट्टान और आवर्त हुआ करते हैं, जो नावों को नष्ट कर देते हैं। समुद्र के किसी भयानक स्थान पर, जिस प्रकार कोई परोपकारी यात्री अन्य यात्रियों को भय से सावधान कर देने के लिये 'लाइटहाउस' बना देता है, उसी प्रकार यहाँ इस तूफ़ानी सौंदर्य-सागर में पड़कर दुःख पाए हुए अनुभव-शील यात्री विधि ने कुच-गिरि को ऊँचा स्थान जानकर उसकी दो चोटियों पर चूचिकाओं के रूप में दो दीपक ऐसे जला दिए हैं, जिनकी ज्योति अखंड है। जिससे भूले-भटके भोले यात्रियों को मालूम हो जाय कि इन पहाड़ों के बीच का समुद्र अत्यंत भयंकर है; वहाँ पर बहुत-से भँवर पड़ते हैं, जिनमें पड़कर नयन-नाव चक्कर लगाने लगती है, परंतु आगे नहीं बढ़ सकती; और अंत में वेग से दोनों पहाड़ों की

प्रबल टक्कर खाकर टूट जाती है । बेचारे यात्रियों की इसी तरह मुफ़्त में जान जाती है । इसी वास्ते तो उस परोपकारी यात्री ने यहाँ पास-ही-पास दो 'लाइट-हाउस' बना दिए हैं, ताकि दूर ही से इनको देखकर पथिकगण अपनी-अपनी नौका को बचाने का प्रयत्न कर लें।

परंतु पाठक ! आपको यह सुनकर आश्चर्य और खेद होगा कि बेचारे ऐसे पुण्यात्मा उदार पुरुषों का यह प्रयत्न बिलकुल निष्फल होता है । बचाने के बजाय ये दीपक तो यात्रियों को उलटे फँसाने में सहायक होते हैं । क्योंकि जैसे दीपक को देखकर पतंग अपनी मृत्यु की कुछ फ़िक्र न कर, अंधे की तरह, उसकी चमक-दमक पर लट्टू हो, उसमें गिरकर जल मरते हैं, वैसे ही ये नयन-पथिक भी जब इन कुच-स्थानों को देखते हैं, तो इनकी सुघरता, द्युति, आभा और सौंदर्य पर मोहित हो, मंत्र-मुग्ध की तरह इनके बीच में आ फँसते हैं। फिर जीवन से हाथ धो बैठते हैं । भलाई के वास्ते किया हुआ यह कार्य बुराई का साधक बन जाता है। इससे तो अच्छा यही था कि दीपक रखने का वृथा प्रयास ही न किया जाता । क्योंकि तब तो उन्हीं को इस दुर्दशा का मज़ा चखना पड़ता, जो भूल-भटककर वहाँ पहुँच जाते । परंतु अब तो इन दीपकों की दमक में, शृंग की सुंदरता को देखकर कई

पतंगरूपी पथिक होम होने आ हाज़िर होते हैं। ग़रीबों पर दया आती है। परंतु किया क्या जाय, विधि का लिखा मेटा नहीं जा सकता। हाँ, इनको बार-बार समझाकर साव-धान कर देना हमारा कर्तव्य है। पर जिनको मरने में ही मज़ा आता है, उनको कौन अपनी उत्कट अभिलाषा पूर्ण करने से रोक सकता है ?

प्रेम-दान-पत्र

रात केलि किय पीय सन, नख छत दिन इमि सोहिं ;
दानपत्र वा प्रेम के, हेमाच्छर मनु होहिं ।

काम का आवेश भी ग़ज़ब करता है। इससे तो मनुष्य ऐसा बौरा जाता है कि जिस वस्तु को वह अपने हृदय से भी ज्यादा प्रिय समझता है, उसी को क्षति पहुँचाते हुए मन में कुछ भी संकोच नहीं करता। संकोच का तो सवाल ही क्या है; वह तो बेचारा अपने आवेश में ही इतना मस्त रहता है कि अपने प्रिय के हानि-लाभ का उसे विचार तक नहीं रहता। सच है, मदन महाराज के प्रेम-साम्राज्य में सभी व्यापार अनोखे हैं। उनके औचित्य-अनौचित्य का विचार करना भारी भूल है।

ख़ैर, सुनिए, हाल यह हुआ कि नायक और नायिका का बहुत समय के बाद मिलन हुआ। बेचारे विरह-वेदना से व्यथित थे। अब भी अपने वास्तविक प्रेम को सीमा के अंदर रखने की कोई सलाह दे, तो सरासर अन्याय है। और यह हो भी कैसे सकता है। अस्तु। मिलन-दृश्य वैसे ही जोश का रहा, जैसे सरिता का समुद्र के साथ समागम होने पर रहता है।

दोनों ओर से सीमा का उल्लंघन हो गया। दोनों का प्रेम इस प्रकार एक दूसरे में समा गया कि 'दो क़ालिब एक जान' हो गए। दोनों ने दिल भरके केलि की। प्रेमावेश में नायक ने नायिका के फूल की पंखुड़ी-जैसे कोमल गात पर, जो नख-क्षत बना दिए थे, वे दिन में विचित्र छटा दिखलाने लगे। कविजी ने उनके लिये एक उपयुक्त उत्प्रेक्षा की है। प्रेमावेश के फल-स्वरूप वे नख-क्षत, पत्र-सदृश नायिका के सुकोमल और स्निग्ध शरीर पर पड़े हुए, दिन में मानों स्वर्णाक्षरों की तरह शोभा देते थे। रात की प्रेमदानलीला की, भविष्य के लिये, एक खासी सनद मौजूद थी।

कामिनी का कूप

सरस नाभि गंभीर तिय, माया-कूप जु एक ;
मन प्राणी तँह फँसि रह्यो, भ्रमत न निकसै नेक ।

कूप में गिरना कोई खेल नहीं है। वहाँ तो, जो गिरते हैं, उनमें से सैकड़े पीछे निन्यानबे ज़िंदगी से हाथ धो बैठते हैं। परंतु आप कहेंगे कि क्या कुँआँ कोई ऐसी भयावनी राक्षसी है कि जिससे बचना सर्वथा मुश्किल है। आपका उज्र बजा है। कुँएँ से बचना बड़ा सहल है। ज़रा-सी सावधानी—चैतन्यता की ज़रूरत है; फिर तो कोई डर नहीं। परंतु पाठक ! हमारा भी फ़र्ज़ है कि किसी अलक्ष्य भय से आपको सावधान कर दें।

सुनिए, स्त्री-सौंदर्य-संसार में एक अनूठा कूप है। वह कूप ऐसा-वैसा नहीं कि साधारण नियमों का पालन कर उससे छुटकारा पा जायँ। वह तो माया-निर्मित है। उसके कोसों दूर-दूर तक का स्थल ऐसा सुंदर और मनोहारी है कि संसारी जीव उसके आकर्षण से नहीं बच सकता। आख़िर विहार करता-करता उसके पास ही पहुँच जाता है। फिर तो ऐसी गुदगुदी, चमकीली और चिकनी ढालू ज़मीन आती है कि कितना ही बचाव क्यों न करें, पैर रपटते-रपटते उसी माया-कूप में गिरने

से ही गति होगी। कूप के अंदर का दृश्य तो देखकर दिमाग़ चक्कर खाने लगेगा। माया ने ख़ूब अक़्ल ख़र्चकर उसमें ऐसे-ऐसे कोमल, सुंदर और मन लुभावने फंदे फैलाए हैं कि गिरते ही जीव उनमें फँस रहता है। अत्यंत कोशिश करता है कि निकल जाऊँ, पर ये सब यत्न निष्फल होते हैं। तेली के बैल के सदृश घूम-घामकर आख़िर उसी जगह आ टिकता है। अच्छी भूलभुलैयाँ है। क्यों न हो, मायादेवी ने इसकी रचना की है।

सावधान हो जाइए, इससे कोसों दूर रहिए; थोड़ा भी पैर इधर बढ़ाया कि जादू की पुतली की तरह अपने आप खिंच आयँगे, और अंत में वही हाल होगा, जो सबका होता है।

छवि-छाक

कुच-पर्वत छबि छकत ही, परो पेट के गाढ़ ;
बामें मो मन फाँसि रह्यो, सकत न कोऊ काढ़ ।

मधु मास में मुदित मन मधुप को मृदु मंजरी पर मस्त होकर मँडराता हुआ और मंजुल मालती तथा मल्लिका के मुकुलित मुकुलों के मधु-मकरंद के लिये मरता हुआ देखकर, मतवाले मन महाराज मोहित हो गए, और उनके मन में आई कि किसी महीधर-माला पर चलकर मलयज मकरंदमय, मंद मारुत का सेवन करें और मनोहर मंदिरों में मन को एकाग्र करके माधव की मान-लीलाओं पर मनन करें, तथा मन-मंदिर में मनमोहन की मनमोहिनी और मानिनियों के मान-मर्दन करनेवाली मधुर मुरली की मीठी तान को मौन होकर ध्यान-पूर्वक सुनें । यह मन में आते ही आप मेल-ट्रेन से भी तेज़, मानसिक ट्रेन पर सवार होकर पलक झपकते संसार के समस्त शैलों से सुंदर कुच-पर्वत-माला पर जा पहुँचे । इन पर्वतों के नीचे उपजाऊ उपत्यका थी । फिर दूर-दूर तक मैदान में मयंक मयूखों के मीठे और मंद प्रकाश में अनेक प्रकार के दर्शनीय दृश्य दृष्टिगोचर होते

थे। दो सुंदर और सुघर पर्वत अपनी गगन-चुंबी चमकीली चोटियों को गर्व-पूर्वक ऊँचा उठाए खड़े हैं। दोनों रंग-रूप, चमक-दमक, कोमलता तथा काठिन्य में एक ही जैसे हैं। दोनों पहाड़ों के बीच में बड़ी गहरी घाटी है। इस घाटी में से होकर कलकल करती हुई, कलकारिणी, प्रेम-पय से भरकर उमड़ती और इठलाती हुई, त्रिवलीरूपी सुंदर वन में से होकर पेट के सौंदर्य-समुद्र नाभी में जा गिरी है। मुख-मलय से मलयज मारुत, मंद-मंद गति से सीत्कार के रूप में बहकर, कुच-पर्वतों पर सैर करनेवाले शौक़ीनों के मनों को मोहित कर रही है। फिर मन महाराज तो ख़ुद मन ही ठहरे, इनके मन कहाँ था; अतः आप स्वयं ही मन होने के कारण कुच-गिरि के छवि-छाक से छककर और मलय-पवन के सुगंधयुत शीतल और मंद प्रवाह पर मुग्ध होकर लट्टू बन गए, और लगे लट्टू की तरह घूमने। आपको यह याद न रहा कि आप पर्वतों की लाल-लाल चोटियों की एक चट्टान पर चढ़कर बैठे हैं। मग्न होकर आप सुध-बुध बिसर गए। बस फिर क्या था, पैर डिगते ही बिन पैर का मन डिग गया और उत्तंग शिलोच्चय शृंग से लबालब भरे हुए पेट के पाट में गिर पड़ा और उसके पानी के प्रवाह में प्रवाहित होकर समुद्र के सबसे गहरे स्थान

नाभी में जा रहा। फिर भला हाथ-पैर पटकने और पर फड़ा-फड़ाने से क्या होता था ? बहुतेरा रोया-चिल्लाया, पर वहाँ कौन सुनता था ? अति सूक्ष्म होने के कारण, और इतने गहरे पानी में ग़र्क़ होने के कारण, उसको कौन देख पाता ? फिर जो कोई देख-सुन भी ले, तो हिम्मत करके निकालने कौन जावे ? दूसरों को वहाँ से निकालना तो दूर रहा, ख़ुद ही उसमें प्रवेश करके कोई नहीं निकल सकता।

आजकल पाश्चात्य सभ्यों की सभ्यता की नक़ल करनेवाले हमारे पर्वत-प्रेमी भाइयों की भी यही दशा है। ऊँचे चढ़कर गिरे हुए, उनको पाश्चात्य शिक्षा के गाढ़ से निकालना कठिन ही नहीं, असंभव-सा जान पड़ता है।

अगम अर्णव

तिय छवि भवसागर बिचै, को करि सकिहै पार ;
मन मोहन कहँ त्रिबलि जहँ, लोभ, मोह अरु मार ।

पंडितों का मत है कि यह संसार एक माया-जाल है, जिसमें माया ने ऐसे-ऐसे प्रलोभन रक्खे हैं कि जीव-पथिक उसके चंगुल में फँसकर भूलभुलैयाँ में पड़े हुए अजनबी को तरह चक्कर खाने लगता है, परंतु रास्ता नहीं पा सकता। बीच-बीच में लोभ, मोह और काम इस प्रकार से आ उपस्थित होते हैं कि बेचारा जीव-पथिक इनकी ऊपरी तड़क-भड़क और मनमोहक छवि देखकर इनको अपना हितैषी समझकर इनके फंदे में फँस जाता है। एक बार फँसने पर फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। इससे बचाना तो उस परब्रह्म की ही सामर्थ्य में है। उसी की भक्ति से इनका वास्तविक रूप समझ में आ सकता है, और तभी इनका त्याग भी हो सकता है। परंतु ज़रा सोचने पर मालूम होगा कि इस संसार को भी सफलता-पूर्वक पार करना कोई मुश्किल बात नहीं है। भगवद्भक्ति इसके लिये एक अच्छा उपाय है। वह कठोर हो, तो हो; परंतु असंभव तो कदापि नहीं है। किंतु दूसरी ओर चलकर देखिए। नायिका के छविरूपी वृहत् संसार को

मिल ही गया। नायिका की हथेली पर लगी हुई लाल मेंहदी को देखकर एक भाव सूझा। नायिका भी अपनी हथेली को निरखती हुई जा रही थी। अब क्या था, कविजी अपनी उद्दिष्ट खोज को पा गए। उन्होंने दुनिया में बड़ा भारी आविष्कार कर डाला।

वह यह था कि जिस प्रकार काँच के पीछे लाल रंग की क़लई लगी रहने से ही उस पर मनुष्य का प्रतिबिंब पड़ सकता है, और वह उसमें अपनी रूप-शोभा को देख सकता है, उसी प्रकार नायिका के, कररूपी काँच की हथेली पर, मेंहदीरूपी लाल क़लई किए जाने पर, हाथ की द्युति और आभा इतनी बढ़ गई कि नायिका का सुंदर मुखड़ा उसमें प्रति-बिंबित होने लगा। अतः अपने कररूपी दर्पण में अपना छवि-सौंदर्य देख-देखकर वह इठलाती हुई चली जाती थी। यह तो आविष्कार ख़ूब हुआ। बहुत-से छोटे-छोटे सुंदर और कौतुकोत्पादक दर्पण निकले, जेबी दर्पण और डायरी पर के दर्पण निकले। यहाँ तक कि डासन कंपनी के बूट भी ऐसी पालिश करके चमकीले बनाए गए कि दर्पण की ज़रूरत ही न रही। जब चाहो, तब उनमें मुख देख लो! सब कुछ हुआ, परंतु इस प्रकार का दर्पण अब तक नहीं निकला था। कविजी के इस दर्पण ने तो सब दर्पणों के दर्प को दलित कर

दिखाया। ऊपर कहे काँचों को तो प्रयत्न-पूर्वक साथ रखना पड़ता है, परंतु यह काँच तो क़ुदरती तौर पर ही हमेशा साथ रहता है। यह तो भूला भी नहीं जा सकता। फिर इस प्रकार के किसी काँच की आजकल के ज़माने में ज़रूरत भी तो बड़ी भारी थी; क्योंकि आजकल 'फ़ैशनेबल' संसार में रूप-शोभा निरखने को काँच अत्यंत आवश्यक चीज़ हो रहा है। अच्छी तरह 'पियर सोप' से मुँह रगड़ा गया हो, 'पोमेड वैसलिन' मला गया हो, फिर नए ढंग की 'अप-टु-डेट' माँग सँवारी हो और अगणित प्रकार के 'लेवेंडर' लगाए हों, परंतु एक दर्पण के विना यह सब वृथा हैं।

कविजी! आपके इस आविष्कार के लिये समस्त फ़ैशनेबल संसार ऋणी है। आपने तो नायिकाओं के लिये ही बताया था, परंतु अब तो नायक भी इसका गुण समझ गए हैं। वे भी इसे धारण करेंगे। निश्चय है कि माँग जल्द ही बढ़ेगी; अतः हमारी राय है कि आप शीघ्र इस क़लई का व्यापार खोल दीजिए। पौबारह पच्चीस हो जायँगे। हम तो आपको सावधान कर देते हैं कि आप इसका 'पेटेंट राइट' करवा लीजिए, नहीं तो और-और लोभी व्यापारियों के चेत जाने पर आप इस फ़ायदे से हाथ धो बैठेंगे।

सरस सैनिक

स्निग्ध गुलाबी नख यहै, तिय कर पद इमि दीस ;
बिधि छबिपुर रच्छाहितै, किए सुसैनिक बीस ।

कल्पना कैसी बढ़िया है! किस युक्ति से 'छविपुर' को रक्षा के लिये बीस सिपाही तैनात किए हैं, ठीक है। ऐसा तो होना ही चाहिए। आजकल कलियुग का ज़माना है। विश्वास दिन-दिन संसार से उठा जा रहा है। जिधर देखो, उधर सब कोई अपना-अपना स्वार्थ साधने में लगा है। जहाँ कहीं किसी अरक्षित वस्तु को देखा, तो झटपट उस पर एक साथ ही बहुत-से झपट पड़ते हैं। ऐसे कठिन समय में अगर छविपुर का गढ़ अरक्षित रहता, तो आश्चर्य नहीं कि कुटिल हृदय उस पर आँख गड़ाते और मौक़ा पाकर उसके अंदर का माल हरण करते। इस वास्ते पहले ही से सजग हो जाना ठीक है। छविपुर तो कोई ऐसा-वैसा क़ंगाल का गढ़ है नहीं कि उसमें चोरी होने का डर ही नहीं। उसमें तो अनंत परिमाण में रत्न भरे हैं। फिर उसको सूना क्यों छोड़ा जाय। परंतु प्रश्न तो यह होता है कि उसकी रक्षा का विधान करे कौन? वही न, जो उसका मालिक, कर्ता-धर्ता है?

विधि ने ही बड़ी कारीगरी के साथ, दिमाग़ ख़र्चकर इसको सर्वगुणसंपन्न बनाया है, और वही इसका स्वामी है। अतः उसी पर इसकी रक्षा का भार पड़ा। रक्षा का जो विधान जुटाया, तो उसे देख-देखकर संसार चकित हो गया।

पाठक! ग़ौर से देखिए, किस अपूर्व ढंग पर, किस प्रकार के सैनिकों द्वारा इसकी रक्षा करवाई है। पहले तो नख-रूप सैनिकों को ऐसे-ऐसे अरक्षित स्थलों पर नियत किया, जिससे धूर्तों का चक्षु-आक्रमण सहज में न हो सके। पुनः एक ऐसी युक्ति निकाली कि आक्रमण करना तो दूर रहा, आक्रमणकर्ता इन सैनिकों तक आकर, इनकी रूप-शोभा और सहृदयता को देखकर ही पानी हो जाते हैं, और अपने कुटिल उद्देश्य को भूल जाते हैं। गुलाबी, स्वच्छ, चमकीली और आभापूर्ण वर्दी पहने हुए इनको देखकर कपटी हृदयों का कपट और ढोंग दूर हो जाता है। फिर ये सैनिक सरस भी हैं। इनकी स्निग्धता ग़ज़ब ढाती है। आजकल के सैनिकों की तरह ये अहृदय, लट्ठमार, रूखे मिज़ाज और शिष्टता से शून्य नहीं हैं। ये तो हृदय में स्निग्ध हैं—दया-पूर्ण हैं। निस्संदेह, इन गुणोंवाले ये बीस सैनिक ज़रूर इस छविपुर की रक्षा कर सकेंगे। क्यों न करें। इनका सरदार तो वही विधि ही है न!

पड़ोसियों का प्रमाद

कच कपोल कहँ बढ़त लखि, बढ़े नितँब कुच नैन ;
कटी छीन भइ जात है, मैनहिं नाहीं चैन ।

नवयौवन का पदार्पण हुआ है । उनके नवागमन के कारण अंग-प्रत्यंग में हर्ष का संचार हो रहा है । मानो यौवनराज ने अपनी नई प्रजा को पारितोषिक प्रदान किया है, और उन्हें ऊँचे-ऊँचे ओहदे और पद बख़्शे हैं ।

अपने अँग के जानिके, यौवन नृपति प्रबीन ;
स्तन मन नयन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन ।

केश कप्तान से कुमेदान बना दिए गए । कपोलों को लाल सिरोपाव मिला है । वे उसको पहनकर लाली लिए हुए, इधर-उधर, अगर-बगर, अड़ोस-पड़ोस में, लाली की निराली आभा फैला रहे हैं । पड़ोसियों की बढ़ती देखकर कुच, नितंब और नैन फूले नहीं समाते । बड़े प्रेमी प्राणी प्रतीत होते हैं । दूसरों के दुःख में दुःख और आनंद में आनंद मनाने-वाले पड़ोसी आजकल कम पाए जाते हैं । फिर कुच, नितंब और नैन-जैसे पड़ोसी तो संसार में बिरले ही हैं, जो अपने पड़ोसियों की बढ़ती देखकर, चौगुने बढ़ जाते हैं ।

अब दूसरी ओर जली-कटी कटि का प्रमाद देखिए। इससे पड़ोसियों की बढ़ती न देखी गई और यह ईर्ष्या की अग्नि से जल-भुनकर दिन-दिन क्षीण होने लगी। भला इससे उनका क्या बिगड़ता, उल्टा इसी का ह्रास हुआ। सचमुच, ईर्ष्या बड़ी बुरी बला है। पाठक तर्क कर सकते हैं कि कटि पड़ोसिनों में श्रेष्ठ कही जा सकती है, क्योंकि शायद उसने हर्षित होकर अपने पड़ोसियों की बढ़ती की बधाई में अपना सर्वस्व दे डाला हो। परंतु पाठक ! क्या दानी भी कभी क्षीण हुए हैं। गीता में भी कहा है—"न हि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।" वे तो ज्यों-ज्यों दान करते हैं, त्यों-त्यों फूलते ही जाते हैं। अतएव कटि की डाहवाला अनुमान अकाट्य है। अब एक मूर्खानंद और बाक़ी रहे। आपका नाम है मदन महाराज। आप 'महा' होने से यौवनराज के भी सरताज ठहरे। आपको इन सबकी बढ़ती देखकर चैन नहीं है। आप इन पर जितनी जल्दी हो सके, कर लगाना चाहते हैं। आप अपना मनोरथ साधे बिना बेचैन हो रहे हैं। इतना लोभ और यह जल्दबाज़ी !

हंसों की हँसी

किंकिनि की झनकार सुनि, हंस गए तिहि ओर ;
मोती वाके हँसत ही, लगे चुगन वा ठौर।

बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी बाज़ वक़्त बेवक़ूफ़ बन बैठते हैं। यही हाल हमारे नीर-क्षीर-न्याय करनेवाले हंसों का हुआ है। कोई अभिसारिका नायिका अपने प्यारे से मिलने जा रही है। वह किसी सरोवर के समीप से होकर गुज़र रही है। उसकी किंकिनी की मधुर रटन सुनकर हंसों के मन नाचने लगे। उन्होंने समझा 'कोई मुग्ध मरालिनी अपने टोल से बिछुड़कर इधर आ निकली है।' सबके सब कामोन्मत्त हो उठे और इस नव-वधू को वरने की उत्कंठा के कारण बिना कुछ जाने-बूझे उधर दौड़ पड़े। 'कहीं वह नवेली पहले पहुँचनेवाले को ही पसंद करे।' यह ख़याल करके वे अपनी असली चाल छोड़कर घुड़दौड़ दौड़े! परंतु पलक झपते ही धोखे की टट्टी टूट गई; आगे जाकर देखते क्या हैं कि कोई सुंदर स्त्री सोलहों शृंगारों से सज-धजकर मरालिनी की तरह मतवाली और धीमी चाल से चल रही है। मोटे और सुडौल नितंबों पर कटि से लटक-कर पड़ी हुई किंकिनी उसकी पीन जंघाओं के आगे और

पीछे चलायमान होने के कारण हंसिनी की-सी मधुर रटन लगाए है।

नायिका ने, मालूम होता है, पहले इनकी समझ की बड़ी सराहना सुनी थी। अतएव ऐसे समझदारों को मोहवश बेवक़ूफ़ बना देखकर उसकी हँसी न रुकी। वह खिलखिलाकर ज़ोर से हँस पड़ी। उसके हँसते ही चारों ओर मोतियों की-सी वर्षा होने लगी। हंसों ने अपनी ज़िंदगी में ऐसे मोती कभी न देखे थे। अतः वे बड़े ही व्यग्र होकर मोती चुगने लगे। परंतु पाठक, यह लो, वे एक दफ़ा ठोकर खाकर भी न चेते और फिर धोखे में फँसे। आइए, इस बार हम तुम मिलकर इन हंसों की हँसी उड़ाएँ।

बड़ों की बड़ाई

कच कपोल कामहिं बढ़े, कुच कठोर दुति नैन ;
नितँबन मोटे होत तो, होत न कटि कहँ चैन ।

वय की वृद्धि होने के साथ-साथ केश, कुच, द्युति, नैन और कपोल भी बढ़े । केश लंबाई और चिकनेपन में और कुच मुटाई और काठिन्य में बढ़े । जिधर देखो उधर ही रोम-रोम से कांति झलकने लगी । आँखों में हर्ष, चपलता और प्रेम की वृद्धि हुई और कपोलों का लालित्य बढ़कर जी को ललचाने लगा । अपने मित्र और सहायकों को यों होड़ाहोड़ी बढ़ते देख नायिका के मन में निवास करनेवाला मनसिज भी बढ़ा—अर्थात् उसकी कामेच्छा भी बढ़ी । फिर तो अत्यंत धन की वृद्धि होने से जो उपद्रव होते हैं, वे होने लगे । कुचाली काम की कुप्रेरणा से कठिनता से कमाए हुए क़ीमती रत्नों को दोनों हाथों से, कहने ही के कंगालों को, लुटाना शुरू कर दिया । फिर तो खज़ाना खाली होने में क्या देर थी ।

पाठको, ऐसे रत्नों को बड़े यत्न के साथ रखना चाहिए । जो कल कुछ भी नहीं थे, वे ही आज धन के मद में चूर हो कर, अपने निकट रहनेवाले मित्रों से बोलते तक नहीं । उन्हें

सहायता देना तो दूर रहा, उल्टा दुःख ही देते हैं । इसी मद में मस्त होकर कुच इत्यादि ने भोली-भाली, लचकीली और कोमल कमर पर जुल्म करने को कमर कस ली । वे उसे बुरी तरह से पावों तले कुचलने लगे । कठोर-हृदय काम से कहकर उस ग़रीबिनी की ख़ूब दुर्दशा करवाई । वह बेचारी मुश्किल से टूटती-टूटती बची । देखा आपने, जो कल उसी पतली कमर से पाले जाकर बढ़े और जिनका वह अभी तक भला ही चाहती है, वही आज उसके वैरी हो गए ।

पाठक ! आजकल ज़माना बहुत बुरा है । परंतु इस संसार में सब ही कुच इत्यादि की तरह कृतघ्न नहीं होते । बहुत-से सज्जन ऐसे भी होते हैं, जो अपने मित्रों की भरसक मदद करते हैं । सच है, बड़े लोग अपनी बड़ाई को नहीं छोड़ते । नितंबों की भी इन दिनों बड़ी वृद्धि हुई थी । वे इतने समृद्धिशाली हो चले थे कि कुच इत्यादिकों को भी उनके सामने नीचा देखना पड़ता था । परंतु इन्होंने अपने इस बल का दुरुपयोग नहीं किया । इन्होंने क्षीण कटि-जैसे दीन-हीन व्यक्तियों की पहले सुनाई की और उनको अपने सर पर स्थान प्रदान किया । ख़ुद उनको सहारा देकर उनको दुष्टों के अत्याचारों से बचाया । सच है—"बड़े बड़ाई ना तजैं ।"

अनोखा अरविंद

सूर देखि फूले कमल, साँझ पड़े कुमलाहि;
चाँद निरखि पिय सुरति करि, सुभग कमल खिल जाहि।

सूर्य को देखते ही कमल खिल जाते हैं और उसके अस्त होते ही सकुचा जाते हैं। सब प्राणियों को चाहिए कि इसी प्रकार अपने पोषक और मित्र के सुख और दुःख में हर्ष तथा शोक प्रकट करें। जैसे सूर्य अपने अधीन कमलों को खुश करता है वैसे हमें भी अपने अधीनों तथा दूसरे व्यक्तियों को प्रसन्न रखना चाहिए। इससे संसार में सुख की समृद्धि होकर आनंद की अतिवृद्धि होती है। देखिए, सूर्य को सुखी देखकर सरसिज फूला नहीं समाता; कमल का विकास देखकर भ्रमरों को हर्ष होता है, और इन सबको देखकर संसार के अखिल प्राणियों को अकथनीय आनंद आता है। इसी तरह ख़ुशी ख़ुद बख़ुद उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अतएव हमें हमेशा हर्षित रहकर स्वर्गानंद की प्राप्ति सहज ही में कर लेनी चाहिए। हमें सूर्य के समान संसार के किसी-न-किसी कोने पर नित्य प्रति प्रेम-प्रकाश डालते रहना चाहिए।

अब तक तो कमल दिन में ही लोगों का उपकार करते थे,

परंतु अब कविजी ने अपने प्रेम-प्रकाश के प्रभाव से एक ऐसा पद्म पा लिया है, जो रात को भी विकसित होकर, उन अरविंदों से कहीं ज्यादा जगत् का भला करता है। यह नायिका का क्रांतिमान और सुंदर हृदय-कमल है, जो चाँद को देखकर और नायक की सूरत की सुरति करके खिल उठता है, और चारों ओर हर्षरूपी मधुर मकरंद की वर्षा करके मन-मधुप को मोहित कर लेता है। पति के प्रगाढ़ प्रेमरूपी प्रखर प्रभा-कर के प्रकट होकर अपनी प्रभा का प्रकाश फैलाने पर ही इस पवित्र पद्म का विकास होता है। सत्य है, प्रेम में बड़ी भारी शक्ति है।

प्रेम का प्रतिकार

गज लखि कदरीवन दरत, दरन दीन दुख मैन ;
जंघ जुगल कदरी किए, चलत गजहि दुख दैन।

आजकल संसार में चारों ओर अन्याय का अंधकार छाया हुआ है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। रक्षक ही भक्षक बन गए हैं। निर्बल की कोई नहीं सुनता ; किसी कवि ने सत्य कहा है—

सबै सहायक सबल के, निबल न कोउ सहाय ;
पवन जगावत आगि को, दीपहिं देत बुझाय।

सत्य है, सबल से सब डरते हैं और उसकी सहायता करने के लिये सदा सजग रहते हैं। ज़ोरवालों की ज़बरदस्ती और ज़ालिमों के ज़ुल्म का कुछ ठिकाना नहीं॥ 'वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहु'—राहू भी टेढ़े चंद्र का ग्रास नहीं करता, किंतु उसके सीधा होने पर ही, पूर्णिमा में, ग्रसता है। केले के वृक्ष बड़े ही कोमल तथा निर्बल होते हैं। अतः मदमस्त हाथी अन्यान्य रूखे, सूखे और मज़बूत वृक्षों से सर न लड़ाकर बेचारे इन्हीं ग़रीबों का नाश करते हैं। केले के वन-के-वन बिध्वंसित कर डालते हैं। जितना खाते उतना खाते हैं, बाक़ी का यों ही पड़ा सड़ा

करता है। उन्हें निर्बलों पर अत्याचार करने में ही आनंद मिलता है।

परंतु संसार एकांगी नहीं है; उसमें जहाँ ऐसे-ऐसे जीव हैं, वहाँ बहुत-से दुखियों का दुःख दूर करनेवाले दयालु और उदार पुरुष भी मौजूद हैं। हमारे मदन महाराज भी दीनों के दुःख को नहीं देख सकते। अतः उन्होंने कदली-खंभों को नायिका की जंघाओं का स्वरूप दिया, जिनके सौंदर्य-भार से झूम-झूमकर चलने के कारण वह नायिका अपनी मतवाली चाल से मस्त-से-मस्त हाथियों का भी मद चूर्ण करने लगी। उसने उन्हें अपनी चाल से मात कर दिया। उनके दुख-दर्द की सीमा न रही। यों कदली-खंभों ने नायिका की जंघा बनकर हाथियों से उनके अत्याचारों का बदला, बदले में अत्याचार किए विना ही, चुका लिया—उन्हें उचित दंड दिया।

मित्र-मिलन

पायल की झंकार सन, उपवन को चलि जाहि ;
मानहु मदन मतंग चढ़ि, मिलन वसंतहिं जाहि ।

नायिका उपवन-विहार के लिये उत्कंठित हो वन को चली, तो ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों मदन महाराज एक आभूषण-सुसज्जित मतवाले हाथी पर चढ़कर अपने प्रिय सखा वसंत से मिलने जा रहे हैं। यह तो स्वभाव-सिद्ध ही है कि जब किसी का कोई मित्र आने को होता है, तब वह प्रेम से प्रेरित हो उससे मिलने की उत्कंठा से उसके सामने जाता है। यह तो संसार का साधारण नियम ही हुआ। प्रेम की मूर्ति महाराज मदन के लिये तो यह नियम विशेषतः सिद्ध होना चाहिए। क्योंकि जिस प्रेम की प्रेरणा द्वारा वह मिलनोत्सुकता होती है, उसी प्रेम की तो मैन महोदय मूर्ति ही हैं । और फिर ये महाराज भी तो ऐसे-वैसे नहीं हैं, जो इनका मिलन किसी रंक की तरह विना किसी राजसो ठाट के हो ।

जरा इनके ठाट-बाट का भी दिग्दर्शन कर लीजिए। सम्मानित प्रिय मित्र वसंत आ हा है। उसको लिवा लाने के लिये अच्छी सुवर्ण-अंबारी से सजा हाथी है, जिसकी एक बैठक

पर वे बैठे हैं और दूसरी बैठक ख़ाली है। और यही है वसंत के लिये। मंगल समय है। अतः हाथी भी ख़ूब सजा हुआ है। पैरों में जो पायल पड़े हुए हैं, उन्हीं की आवाज़ नायिका के पैजनों की रम्य ध्वनि के सदृश है। हाथी बड़ा झूम-झूमकर मतवाली चाल से चल रहा है, जो पीन जंघ-युगलधारी नायिका की युवावस्था की मतवाली चाल की हूबहू नक़ल है। यह सवारी जा रही है वसंत को लिवा लाने के लिये, और वही वसंत नायिका का उद्दिष्ट उपवन है। इस प्रकार जाती हुई यह कामिनी गज-पीठ पर विराजमान कामदेव से कमनीयता में कुछ कम नहीं है। तभी तो कविजी ने उत्प्रेक्षा करके हमारे हृदय में आनंदोत्कर्ष उत्पादित कर दिया है। धन्य कविता-कुमुद-कलानिधि !

महामुनि मन

रह्यो चरन तल आय, रोम-रोम तिय छबि निरखि ;
मनमुनि नाहिं डुलाय, लाख रिझावत आँख युग ।

नील गगन में विचरण करता हुआ, आकाश-गंगा में स्नान करके और उसमें उगे हुए अनूठे-अनूठे कमलों का रसास्वादन करके, मन-मुनि ऊँची-ऊँची चोटियोंवाले पर्वतों पर उतर पड़ा। और वहीं से नीचे के मैदान की उपजाऊ उपत्यका को देखकर नीचे उतरा और हाथियों तथा सिंहों के निवासस्थान, घने वन को पार करके, पद-पद्म के नीचेवाली लाल और सुकोमल जगह पर आ टिका। फिर मालूम नहीं इतने ऊँचे से उतरने की थकावट के कारण या सिंह इत्यादि वन्य जंतुओं के डर से अथवा पदतल के अनुराग के कारण, उसने ऊपर उठने का नाम तक न लिया। योगिराज की तरह दृढ़ासन मारकर वहीं बैठ गया। आँखरूपी अप्सराओं के लाख रिझाने पर भी वहाँ से नहीं हिला, तप भंग नहीं हुआ। हमें तो यही मालूम होता है कि उस उत्तम स्थान को उपासना के उपयुक्त समझकर वहीं सिद्ध योगासन लगा लिया—समाधिस्थ हो गया।

हम तो इन मन-मुनि को सबसे श्रेष्ठ योगिराज मानते हैं।

देखिए, जिन चरणतल को योगिराज कृष्ण तक ने अपने मस्तक पर सादर धारण किया, भला उन चरणों की उपासना करनेवाले और उन पर लुठनेवाले महामुनि मन के महत्त्व की महिमा का हम कहाँ तक बखान कर सकते हैं। हमें तो कहीं इन चरणों के रजकण मिल जायँ तो बस पर्याप्त हैं।

ललन की लाली

राधा ओढ़े लाल पट, लई गोद नँदलाल ;
नभ लाली शोभत मनहु, अस्त होत करमाल ।

राधा लाल रंग की साड़ी पहने हुए खड़ी हैं । बड़ी सुंदर प्रतीत होती हैं । इतने ही में वहाँ कृष्ण महाराज आ पहुँचे । प्रिया के रूप-लावण्य को देखकर मनमोहन मुग्ध हो गए; विशेषत: लाल साड़ी की शोभा का निरखकर खुद प्रेम की लाली में सराबोर हो गए । प्रेम-विह्वल होकर, लपककर, प्यारी को गोद में उठा लिया । उस समय कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो सायंकालीन नभ की लाली में सूर्य अस्त हो रहे हैं । कृष्ण सायंकालीन नभ हैं । राधा की लाल साड़ी नभ की लालिमा है । साड़ी में से राधा का मुख अस्त होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होता है । नेचर-निरीक्षकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि अस्त होते हुए सूर्य में चकाचौंध करनेवाली तेजी न रहकर लाली ही अधिक दिखलाई देती है । उधर कृष्ण की गोद में लज्जा के कारण, जैसा कि स्त्रियों में स्वाभाविक है, राधा का मुख लाल हो गया है । अतः राधा के तत्कालीन मुख-कमल को

अस्त होते हुए सूर्य की उत्प्रेक्षा वास्तव में अनूठी है। 'प्रेम' को अनेक धन्यवाद कि जिसकी बदौलत हमें राधा-कृष्ण की ऐसी सुंदर झाँकी के दर्शन हुए हैं।

———

रंग में रंग

पीतवरण हैं राधिका, यैह जानि कंसारि ;
पीत वसन नित धरत हैं, प्रिया रूप अनुहारि ।

अहा ! क्या ही सुंदर भाव है । प्रेमियों को परमेश्वर ने न-जाने कैसा कोमल और स्नेह-स्निग्ध हृदय दिया है कि वे अपने प्यारे की प्रत्येक वस्तु को उसी की मूर्ति के सदृश जानकर उसको हृदय में स्थान देते हैं। प्रिय की निर्जीव वस्तु को भी सजीव मानकर उसमें और अपने प्रिय में कोई भेद नहीं देखते। या यों कहिए कि उनके प्रेम में यह शक्ति है कि जिस वस्तु में चाहें, वे प्रिय के दर्शन कर सकते हैं ; जिस निर्जीव को चाहें उसके बल से सजीव कर सकते हैं ।

सच है, प्रेम की महिमा अपार है । साक्षात् प्रेम के अवतार भगवान् श्रीकृष्ण को ही लीजिए। उनका व्यापार तो देखिए ; प्रेम उनसे क्या करवाता है । प्राणप्रियतमा राधिकाजी की तन-छवि कनक के समान पीतवर्ण की है। ये तो उनको बड़ी ही प्यारी लगती हैं। पीतवर्ण भी उनको बहुत रुचता है। क्यों न रुचे, यह तो उनके हृदय की प्रतिमा राधाजी का ही वर्ण है। यही कारण है कि इस पीले रंग ने उनके हृदय में अति उच्च

स्थान पाया है। वे तो इसी में सब सौंदर्य सागर को भरा पाते हैं। जहाँ जाते हैं, पीत-ही-पीत पाते हैं। सचमुच, प्रेम का पंथ निराला है।

पाठक, आपको अब यह तो मालूम हो ही गया होगा कि श्याम नंदलाल को पीतवर्ण क्यों अत्यंत रुचिकर है। अब आप उनके पीतांबर धारण करने का रहस्य भी समझ जायँगे। और, और रंगों के सामने उनकी आँख को पीला रंग ही अच्छा लगता है। जहाँ उनको कोई पीली वस्तु मिली कि आत्मा फड़क उठती है और मन प्रेम महानद में ग़ोते खाने लगता है। उसी समय राधिकाजी की मनमोहिनी मूर्ति, आँखों आगे मुसकिराती हुई, खड़ी हो जाती है। बस, उनको और क्या चाहिए। यही कारण है कि कंसारि पीले वस्त्र धारण करने में ही सुख पाते है; उन्हें और रंग के वस्त्र ही नहीं रुचते। भला क्यों रुचें? ये तो पीले वस्त्र के रूप में ही राधिकाजो को अपने अंग से लिपटाए रखते हैं। धन्य है प्रेम, तू धन्य है; तेरी महिमा कहाँ लों बखान करें। अब तो केवल यही जपते हैं—

प्रेम, प्रेम, प्रेम!

कवि की कमान

तिया धनुष नाभी नली, जिहि कचबेरिण विसाल ;
त्रिबली रोम निषंग सर, छुटत न बाचिहै काल ।

काल का यह काम था कि सबका इंतकाल करे। परंतु वह बेचारा तो खुद ही काल के गाल में फँसकर बेहाल हो रहा है। काल तब तक ही चौड़े मैदान में आकर शिकार खेलता था, जब तक कि उसे किसी का डर न था। परंतु अब तो उसे भी इस विकराल काल के पाले पड़कर जान के लाले पड़ रहे हैं। लो, हमारी तो जान बची! जब तक यह दोनों काल लड़कर न निपट लें, तब तक हमें और-और बातों से निपट जाना चाहिए। हम उसे चाहे जितनी गालवाल निकालें, चाहे पहली चालढाल बदलें या न बदलें, हमें मालताल उड़ाने और बाल की खाल खींचने का अच्छा अवकाश मिला है। चलो, आगे की आगे देखी जायगी। फिर कौन कह सकता है, क्या हाल होगा ?

सचमुच कवि ने इस दोहे में कमाल कर दिया है। इसके सामने बहुत-से कवियों की तो दाल ही न गलती होगी। बाल ललना का लचकीला शरीर, गंभीर नाभि-कूप, सुंदर लहर खाती हुई त्रिबली, पेट पर की तीखी और चमकीली रोमावली तथा पद-

तल तक लटकते हुए बेणी के बालों ने कवि को मालामाल करके निहाल कर दिया है। निराले ही ढंग की कमान है। भला जब शिकारी इस कमान पर बेणीरूपी, कभी न टूटनेवाली प्रत्यंचा चढ़ाकर, रोमावलीरूपी बाणों से भरा हुआ त्रिवली-रूपी निषंग लेकर मतवाली चाल से चलेगा और काल को देखते ही रोम-शर को नाभी नली में डालकर और धनुष पर चढ़ाकर कान तक खींचकर तानेगा, और जो कहीं काल के भाल को ताक-कर तीर को छोड़ देगा तो फिर उसका बचना कठिन ही नहीं, असंभव हो जायगा। फिर बेचारे मनुष्य, जो थोड़े काल में ही कराल काल के जाल में फँसकर उसके विशाल गाल में ग़र्क़ हो जाते हैं, कहाँ जायँगे ? बस, यदि यह बान तन गया तो समझ लो इन ग़रीब जीवों का तो अकाल-सा पड़ जायगा। रहम करे इन के हाल पर नंदलाल !

ओस या आँसू

ओस बूँद जे हैं नहीं, जो इत-उत दिखलात ;
आँसू गिरत गुलाब के, निरखि प्रिया को गात ।

गुलाब के पुष्प पर इधर-उधर जो बूँदें पड़ी हुई हैं, वे ओस-कण नहीं हैं, किंतु नायिका विशेष के शरीर की सुंदरता देखकर, डाह के कारण, उसके आँसू आ रहे हैं। वह यह देख कर बड़ा दुखी हो रहा है कि नायिका सौंदर्य में उससे बढ़ी-चढ़ी है।

बहुत संभव है यही बात हो ; परंतु कोई उस गुलाब से दरयाफ़्त तो करे कि दरअसल माजरा क्या है ? मुमकिन है, ये हर्ष के आँसू हों। गुलाब को अपने ही सहजातीय दूसरे गुलाब को देखकर बड़ी भारी ख़ुशी हुई हो कि जिससे आँखों से प्रेमाश्रु टपकने लग गए हों। लेकिन अगर ये आँसू डाह के कारण आए हैं, तो यह गुलाब की नातजुर्बेकारी है । यह सरासर उसकी मूर्खता है। अकेले गुलाब ही ने सुंदरता का ठेका थोड़े ही ले रक्खा है। इस पृथ्वी पर एक-से-एक बढ़कर सुंदर मिलते हैं। अभी बेचारे गुलाब ने देखा-भाला ही क्या है। यों दूसरों की सुंदरता देखकर यदि वह रोने लगेगा तो अपनी सुंदरता से और हाथ धो बैठेगा। मान जाओ, मियाँ गुलाब!

यह रोना-पीटना क्या सीखे हो ? हवा के साथ ख़ूब अठखेलियाँ करो और मज़े उड़ाओ। थोड़ा-सा हमारा भी स्वार्थ है, इसलिये कहते हैं, वरना हमें क्या मतलब है। जैसा चाहो वैसा करो। बस, केवल इतना ध्यान रखना कि रोते-रोते आँसुओं के साथ अपनी सुगंध को न बहा देना, वरना दूसरे घरों में आग लग जायगी। तुम्हारी सुगंध के प्रेमियों के लिये मामला नाज़ुक हो जायगा।

मयंक का मोह

रात केलि किय आय इक, सरिता जल महँ नार ;
भयो मुग्ध छबि निरखि शशि, खोजत रूप अपार ।

क्या आपने कभी शुक्लपक्ष की रात्रि को किसी सरिता के तट पर खड़े रहकर देखा है कि कोई चमकीली वस्तु तीव्र गति से इधर-उधर दौड़ रही है ? और देखकर भी कभी सोचा कि यह है क्या ? अगर नहीं, तो सुनिए । ये चंद्र महोदय हैं । प्रेम के मारे हैरान हुए इधर-उधर बावले-से फिर रहे हैं । इन्होंने इसी सरित-जल में अपनी एक प्रिय वस्तु खो दी है । उसी की तलाश में ये दौड़ रहे हैं । बात यह है कि एक रात्रि को एक चंद्रमुखी नायिका सखियों सहित इस सरिता में जल-क्रीड़ा करने आई थी । चंद्रदेव की इसकी सौंदर्य-शोभा पर आँख लग गई । वे इसकी छटा पर दिलोजान से फ़िदा हो गए । उस समय तो अपनी प्राण-प्रतिमा को देखकर मन-ही-मन उस स्वर्गानंद को लूटने लगे, जिसको विरले सौभाग्य-शाली पुरुष ही पाते हैं । वे इसकी अठखेलियाँ देखकर पागल हो, निस्तब्ध भाव से, अनिमेष नेत्र इसकी छवि को निरखने लगे ।

इधर समय बहुत हुआ जान, नायिका जल के बाहर निकली और सखियों सहित अपने स्थान को चल पड़ी। चंद्र महाराज का दिल लेकर वह चली गई। यहाँ ये महाशय अभी तक उसी के ध्यान में मग्न थे। इनकी दुःख की घड़ी अभी शुरू नहीं हुई थी। इनको तो यह भी ख़बर नहीं थी कि जिसकी सुधि में ये लीन हैं और जिसकी प्रतिमा मन में देखकर ये मन के मोदक उड़ा रहे हैं, वह तो कभी की वहाँ से चल दी। आख़िर इनकी मोह-निद्रा जाग गई। अब तो इन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। कहाँ जायँ, किधर जायँ, प्रिया को कहाँ ढूँढ़ें? ध्यान में ऐसे चूर थे कि जाते वक़् उसकी राह भी नहीं देखी। इनको तो इतना ही स्मरण था कि वह जल में केलि कर रही थी। बस, अब क्या था, लगे बिजली की गति से इधर-उधर जल में दौड़ने। सब सरिता छान डाली, पर वह न मिली। क्या किया जाय? बेचारे चंद्र की इस दयनीय दशा पर दया हो आती है। अगर किसी ने नायिका को जाते देखा हो, तो बतावें, जिससे इस सुधांशु की प्रेमतृषा बुझे। देखो, ये इस शीघ्र गति से इधर-उधर भागते हैं कि यह पहचानना कठिन है कि एकरूप होने पर भी अपनी द्रुतगति से अनेक-रूप लक्षित होते हैं, या वास्तव में ये अनेक रूप धारण किए हुए खोज कर रहे

हैं, जिससे खोज में सुबीता हो और समय थोड़ा लगे ? यह सोचना भी अयथार्थ नहीं है, क्योंकि चंद्र तो मायावी हैं ही, वे जब चाहें तब लाखों रूप धर लें। पर, "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु।" इनको राह कौन बतावे; नायिका को उस समय जाते तो किसी ने न देखा होगा। यदि ऐसा ही है, तो ये अपनी धुन में मर मिटेंगे। इनको इस मंतव्य से कौन हटा सकता है। इनकी दुखी दशा पर हमें भी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए।

छवि की छदाम

विधि के हाथों सकल छवि, सोरह आने दाम ;
मिली प्रिया कहँ शेष सब, जग कहँ एक छदाम ।

विधि के हाथ में पूरी सोलह आना सुंदरता थी। उसमें से उन्होंने सारे संसार को एक छदाम सौंदर्य देकर बाक़ी सब छवि प्रियाजी को दे डाली। फिर भला प्रियाजी की सुंदरता के सब क्यों न गीत गावें। जग के हिस्से में केवल एक छदाम छवि आने पर भी ख़ूबसूरती के वे नायाब नमूने नज़र आते हैं कि जिनकी कोई तारीफ़ नहीं की जा सकती। फिर भला जहाँ एक छदाम कम सोलह आना रूप है वहाँ की शोभा का तो क्या कहना है। तभी तो कृष्ण सदृश योगीश्वर प्रियाजो के चरणों में शीश धरते थे। इसी रूप के बल पर तो प्रियाजी ऐसा मान किया करती थीं कि मनमोहन के लाख मनाने पर भी नहीं मानती थीं क्यों मानतीं, जब वे यह जानती थीं कि अंत में मोर-मुकट उनके चरणों में लुठेगा। सच है—"है प्रभाव सौंदर्य को सब पै एक समान।"

प्रियाजी में सौंदर्य इतनी प्रचुरता से पाया जाता है, यह सुनकर कदाचित् हमारे नई रोशनीवाले भाइयों के दिलों

में भी प्रियाजी को सौंदर्योपासना की ग़रज से देखने की इच्छा हुई हो। मगर ये बेचारे सौंदर्य को क्या परखेंगे। इनकी आँखों में तो 'वीनस डी, मायलो', 'हैलन' और 'मेरी क्वीन आव स्काट्स' की सुंदरता समाई हुई है।

अजीब औषधि

विधि को यह अचरज महा, तियछवि में प्रकटाय ;
नयन-बान घायल करें, अधर-सुधा हरषाय ।

पाठको! आपने बड़े-बड़े कौतुकागार देखे होंगे; उनकी सैर की होगी, परंतु क्या आपने कभी विधि के इस संसार रूपी अद्वितीय वृहत् कौतुकागार की विचित्रताएँ देखीं ? अगर नहीं, तो आइए, कविजी ने कृपा कर इस कौतुकागार की एक विचित्र वस्तु दिखलाने का वादा किया है। समस्त कौतुकागार को तो देखना कठिन काम है; परंतु लीजिए, आज तो इस 'म्यूज़ियम' की एक ही चीज़ देख लीजिए । उसकी विशेषता पर विचार कीजिए और तब अनुमान कर लीजिए कि इसी प्रकार की अपरिमित वस्तुओं की आगार, यह कौतुकशाला क्या ही कारीगरी का नमूना होगी ।

सुनिए, आपने संसार में बड़े-बड़े वैद्य, डॉक्टर, हकीम, देखे-सुने होंगे; भिषक्रत्नों से भेंट की होगी; 'एलोपेथिस्टों' और 'होमियोपेथिस्टों' का नाम सुना होगा। इनका कार्य देखकर यह भी जाना होगा कि ये अपने-अपने अनुभव के अनुसार

ओषधियाँ देकर बीमारों का मर्ज़ दूर करने की कोशिश करते हैं। परंतु क्या, आपको याद भी पड़ता है कि, कहीं आपने कोई ऐसा वैद्यराज देखा है, जो क्षति पहुँचानेवाला भी हो और फिर ओषधि-प्रयोग द्वारा अच्छा करनेवाला भी हो। हमें निश्चय है कि आपने ऐसी वस्तु सजीव और निर्जीव सृष्टि में कहीं न देखी होगी, जिसमें मारण और तारण के विरुद्ध गुण एक साथ हों। अच्छा तो ध्यान देकर सुनिए; आपकी इस उत्कंठा को कविजी पूरा करते हैं। वे कहते हैं कि अब इन डॉक्टरों का पेशा नष्ट हुआ समझो, क्योंकि सब काम विशेषतापूर्वक एक ही दवा से निकल जायँगे। यह दवा स्त्री के सुमुख रूपी शीशी में रक्खी हुई है। इसका अजीब गुण यह है कि नयनबाणों द्वारा घायल कर यह इधर मारण का कार्य करती है, तो उधर तुरंत ही अधरसुधा-पान रूपी मरहम को उस घाव पर लगाकर बचाने का कार्य करती है। अच्छा हुआ, जिस विधि ने इस प्रकार का रोग बनाया, उसी ने साथ ही साथ, मनुष्यों पर दया कर, अच्छी और अचूक ओषधि भी बता दी। यही नहीं, उन्होंने दवा को इतना सुलभ कर दिया कि विना प्रयास ही, पास ही मिल जाती है। जिससे कि रोगी को बहुत काल तक दुःख नहीं भोगना पड़ता। ऐसा न होता, तो भला नयनबाणों से घायल

होकर कोई किसी प्रकार बच सकता था ? विधि की इस दूरदर्शिता और परोपकार की हम कहाँ तक प्रशंसा करें।

आत्म-आसक्ति

देख मुकुर में रूप निज, मोहित ह्वै गई बाम ;
डस ली अपने आपको, साँपिन ने हा राम !

नायिका दर्पण में अपना मुख देखकर अपने ही सौंदर्य पर आप ही आसक्त हो गई। शोक ! महाशोक !! नागिन ने अपने ही को डस लिया !

मालूम होता है कविजी प्रेम-साम्राज्य के सौंदर्य का ज़िक्र कर रहे हैं। वहाँ मुमकिन है कि ऐसे वाक़े हो जाते हों कि ख़ुद अपनी ख़ूबसूरती पर आप लट्टू हो जायँ। यहाँ तो इतने ऊँचे दर्जे की ख़ूबसूरती शायद ही कहीं नज़र पड़े। यह तो रूप क्या कोई बला समझिए ! वरना ऐसे-वैसे रूप को देख-कर भला कोई आप ही पर क्या फ़िदा होगा ! या संभव है— 'मिला प्रिया को शेष सब, जग को एक छदाम'-वाली ये प्रियाजी ही हों। इनके अतिरिक्त हमें कोई और नज़र नहीं पड़तीं कि जिनमें इतना सौंदर्य हो। या संभव है कि नायिका दर्पण में अपना मुख देखती हुई अपने कपोल पर पड़ी हुई लट को देख-कर, उसे सचमुच नागिन समझकर ऐसी डर गई, मानो उसे नागिन ने डस लिया है। या संभव है कि नायिका अपनी लट

पर आप ही फ़िदा हो गई हो। यह बहुत संभव है, क्योंकि यह लटरूपी नागिन बड़ी बुरी होती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसने अपने आपको डस लिया हो। यह अवश्य कोई ख़ास नागिन होगी। मामूली नागिन का तो यह काम नहीं है। जो नायिकाएँ इस प्रकार लटरूपी नागिनें पालती हैं, उनको चाहिए कि इनको अपनी निगरानी में रक्खें, क्योंकि ये बड़ी ख़तरनाक हैं। ख़ुद अपने आपको डस लेती हैं। फिर भला ग़ैर तो इनसे बच ही क्या सकता है ?

प्रेम का प्रतिबिंब

रतन जरे पट नील में, शोभति है इमि नार ;
मनहु गंग प्रतिबिंब नभ, शशि तारन को चार ।

ताराओं से जड़ी हुई नीले रंग की साड़ी में नायिका इस प्रकार शोभा देती है, जैसे गंगा के निर्मल जल में प्रतिबिंबित होकर नभ, चंद्र और तारे शोभा देते हैं ।

वास्तव में दृश्य दर्शनीय है। गंगा के निर्मल जल में नीले नभ का प्रतिबिंब पड़ने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह नीले रंग की साड़ी है। ताराओं का जो प्रतिबिंब पड़ता है, वही मानो उस साड़ी के तारे हैं। चंद्रमा का प्रतिबिंब ऐसा प्रतीत होता है मानो नायिका का मुख है । नभ के नीले प्रतिबिंब में से गंगा का निर्मल श्वेत जल जो चमकता है, वही मानो उस नायिका की नीली साड़ी में से चमकता हुआ गोरा गात है । कविजी की प्रतिभा सचमुच प्रशंसनीय है । ऐसा प्रतीत होता है कि आपने प्रकृति का पूरा-पूरा पाठ पढ़ा है । तभी तो इन्हें प्रत्येक बात में प्रकृति के सौंदर्य के पुनीत दर्शन होते हैं ।

मान-मोचन

नागिन री प्रिय ! पीठ पै, बोलि उठे घनश्याम ;
हरबराय उठि मान तजि, पिय सों लिपटी बाम ।

सुनते हैं गुरु विना ज्ञान नहीं आता। इसी बात को शास्त्रों ने भी पुकार-पुकारकर कहा है। जहाँ कहीं आप किसी पंडित को देखें, तो पूछने पर पता लगेगा कि उनके कोई-न-कोई आदरणीय गुरुजी अवश्य रहे हैं। परंतु इसके विपरीत, महाकवि प्रेम के प्रेम-साम्राज्य में विद्या विना गुरु के ही अच्छी तरह आ जाती है। आप पूछेंगे कि यह तो बड़ा आश्चर्य है; भला, विद्या भी कहीं विना गुरु के आ सकती है ? आप एकलव्य का दृष्टांत देकर प्रमाण भी देंगे। परंतु क्या हो, आपके ये सब प्रमाण यहाँ किसी काम के नहीं हैं।

अब सुनिए, नीति, चालबाज़ी और चतुराई ये ऐसे विषय हैं कि प्रेम-साम्राज्य में विना सिखाए ही आ जाते हैं। लेकिन इन्हीं विषयों को सीखने के लिये आजकल बड़े-बड़े गुरुओं के पैरों पर शीश झुकाना पड़ता है। इन्हीं की प्राप्ति के लिये देश देशांतर घूमना पड़ता है। इस विद्या को आज-कल लोग डिप्लोमेसी के नाम से पुकारते हैं ; और इसका

अध्ययन बड़ी धूमधाम के साथ इँगलैंड की एक-से-एक अच्छी कई जगहों में होता है। तब कहीं जाकर यह विद्या दिमाग़ पर दख़ल कर पाती है। परंतु इतना करने पर भी एक बड़े-से-बड़ा डिप्लोमेट प्रेम की चाल देखकर चकराने लगता है।

देखिए इसी प्रकार की एक चाल का यहाँ भी उल्लेख है। राधिकाजी ने कृष्णजी से, प्रेम-कलह कर, मान ठान लिया है। वे प्रिय की सेज पर, तन छीन मन मलीन, मुख का रुख बदले पड़ी हैं। कृष्णजी से प्रिया का यह मान सहन नहीं हो सकता। परंतु वे उन्हें समझावें भी तो किस मुख से। वे ही तो इनके कोप के कारण थे। अतः एक चाल ऐसी चली जिससे मामला इधर-का-उधर हो गया। इस चाल को तो सुनकर ही बड़े-बड़े शिक्षित नीति-कुशल मनुष्य सर खुजलाने लगेंगे। किया यह कि मुख फेरी हुई राधिकाजी की पीठ पर पड़ी बेणी को देख, साँपिन की सुधि कर, वे एकदम बोल उठे—"नागिन री प्रिय! पीठ पै।" अब क्या था। भला ऐसा कहने पर स्वभाव-भीरु कोमल-हृदया राधाजी किस प्रकार चुप रहतीं? वे तो मारे डर के लगीं काँपने, और एकदम विना सोचे-समझे मान की आन को न मानकर शीघ्रता से मुख फेर कृष्णजी के अंक की शरण ली। मान सब छूट गया। पूर्व के प्रेम की ज्योति

मान के मंजन से साफ़ होकर और ज़्यादा जग-मगा उठी। पाठक, देखा, इसे कहते हैं चतुराई; इसे ही कहते हैं मस्तिष्क की कार्य-तत्परता। यही है उच्चकोटि की डिप्लोमेसी या चालबाज़ी। अब सोचिए, क्या कृष्ण ने यह विद्या कहीं सीखी थी, जो इसमें ऐसे निपुण निकले ? नहीं। तो फिर धन्यवाद दीजिए प्रेम को, जिसकी बदौलत यह अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

कलानाथ का कलंक

केहि कारण पिय ! चंद हिय, श्याम दिखाई देत ;
तो समान यह मान करि, विरहिन को दुख देत ।

गगन में चंद्रदेव ताराओं के साथ विहार कर रहे हैं। नायिका अपने पति-देव के साथ प्रकृति का निरीक्षण कर रही है। चाँदनी छिटक रही है, मानो रजत का बिछौना बिछा दिया है। नायिका चंद्र की छवि देखकर बड़ी प्रसन्न हो रही है। शशि की शोभा को सराहते हुए उसने नायक से पूछा—"हे प्राणनाथ ! चंद्र का हृदय श्याम किस कारण से दिखलाई देता है ?" नायक बड़ा चतुर था। उसने समझा कि आज यह अच्छा अवसर हाथ लगा है। बेचारे को नायिका मान करके बहुत तंग किया करती थी। अतः वह, मान की बान छुड़ाने की जी में ठानकर शान से इस प्रकार, अपनी जान से बोला—"हे प्यारी ! यह तेरे ही समान मान करके विरही जनों को बहुत दुःख देता है। उसी का यह फल है कि उसका हृदय काला हो गया। मान करने से बड़ा नुक़सान होता है। इस मान के ही कारण चंद्र की सुंदरता में कैसा धब्बा लगा है। इसका सारा सौंदर्य धूल में मिल गया है।

जिस तरह तू मान करके मुझे दुःख देती है, इसी तरह यह विरहीजनों को, जो बेचारे विरह के कारण पहले ही से दुखी होते हैं, मान करके जलाता है। इसीलिये अब अपने कर्मों का फल भोगता है। मान करना महापाप है। और अपराधों को चाहे परमात्मा क्षमा कर दे, परंतु सुनते हैं कि मान-ऐसे घोर पाप को वह कभी क्षमा नहीं करता। अतः आज से तू भी भविष्य में मान न करने का प्रण कर ले।"

खूब, नायक महाराज! जो कुछ कहना है, दिल खोलकर कह लीजिए। फिर ऐसा मौक़ा नहीं मिलेगा। संभव है, तुम्हारे उपदेश का असर हो जाय। तुमने लेक्चर तो खूब ही फटकारा है, मतलब की सब बातें कह डाली हैं। अगर फिर भी नाकामयाबी हुई, तो तक़दीर की बात। किंतु ऐसी हालत में तुम मान को एक निराला ही आनंद समझ लेना।

वाम विधु

अब तो मानहिं तजरि प्रिय, देख याहि के काम ;
याके कारण ह्वै गयो, चंद बापुरो बाम ।

सुनते हैं, राजनीति चार प्रकार की होती है—साम, दाम, दंड और भेद । इन्हीं के बल पर राजा अपने राज्य की परिस्थिति ठीक रख सकता है । परंतु क्या आप समझते हैं, यह नीति संसार के राजाओं में हो होती है ; क्या उन्होंने ही इसका ठेका ले रक्खा है ? अगर आपका ऐसा ख़याल है, तो आप ग़लती पर हैं । आपको अभी प्रेम-साम्राज्य का पता नहीं है । वहाँ ता इस नीति का प्रत्येक प्रेमी पूरा ज्ञाता होता है । वहाँ पर यह प्रचुर परिमाण में प्रयोग में आती है । यही नहीं, वहाँ यह नीति सदा सफल ही होती है । राजाओं के हाथ में पड़ी हुई यह कभी-कभी विफलप्रयत्न भी हो जाती है । इसी नीति के उदाहरण-स्वरूप, ऊपर के दोहे से आपको मालूम होगा कि प्रेम में नीति का क्या स्थान है, और उसमें तथा और-और प्रकार की नीति में क्या अंतर है ।

मानगर्विता नायिका को प्रियतम ने कहा कि हे प्यारी, अब इस वृथा मान को छोड़ दे ; देखती नहीं, इस मान ने

कितनी-कितनी हानियाँ पैदा की हैं। इसी के कारण तो बेचारा सौंदर्य-जगत् का सिरताज सुधांशु वक्र-रूप हो गया है। जब इसने भी तुम्हारी तरह मान किया, तो यह दशा हुई। मान बहुत बुरी चीज़ है। तात्पर्य यह है कि ऐसा कहकर नायकजी ने यह ध्वनित किया कि मान से जिस प्रकार चंद्र टेढ़े हो गए, उसी प्रकार तू भी विकृतांगी न हो जाय। यह कहकर तो नायकजी ने आजीवनस्थायी भय का वह अंकुर नायिका की हृदयस्थली में जमा दिया, जो अवश्य फलीभूत होता। उनकी नीति-निपुणता का यह नायात्र नमूना है। दंड अर्थात् धमकी और सज़ा के सहारे राजा न्याय करता है, परंतु उसका न्याय कभी-कभी बिलकुल निष्फल होता है। पर यहाँ तो धमकी का फल आजीवनस्थायी और उद्देश्य-साधक हो गया है। एक ही बार की मृदु धमकी ने वह काम किया कि भविष्य में अनेक सुख में विघ्न डालनेवाले कार्यों का कारण मिट गया। वाह नायकजी, नीति इसी को कहते हैं।

मान-मर्दन

पिय अजहूँ आए नहीं, देहों लाखों गारि ;
पिय आवत ही मान को, दियो लाख जिमि गारि ।

नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी है । समय बहुत ज़्यादा हो गया है, परंतु नायकजी अभी नहीं पधारे हैं । बेचारी के हृदय में रह-रहकर अनेक ख़याल उठते हैं और तुरंत ही शांत हो जाते हैं । उनके न आने का कारण सोचती है, परंतु कुछ पता नहीं लगता ।

आज तक तो उसका यह विचार था कि मेरे प्रेम में वह आकर्षण-शक्ति है, जो उन्हें जब चाहे मेरी ओर खींच ला सकती है, परंतु आज इसके विपरीत होते देख, उसकी आशाओं पर पानी फिर गया । सोचते-सोचते वह झल्ला उठी और लगी नायक पर कोप करने । सोचा कि आज आते ही उनको ऐसा आड़े हाथों लूँगी कि फिर इस प्रकार की ग़फ़लत कभी न करेंगे । फिर तो मुझे प्रतीक्षा करने का कोई मौक़ा ही न आयगा । उसने तो सोचा था कि केवल आज के भला-बुरा कहने और ऊँचा-नीचा लेने से सदा का झंझट और प्रति-दिन की प्रतीक्षा मिट जायगी । परंतु हुआ क्या, सो सुनिए ।

उसका यह मनोरथ सफल न हुआ । कुछ समय के बाद रसीले नायकजी मुसकिराते हुए दूर से इस ओर आते नजर आए। इधर नायिका भी इस समय तक रोषाग्नि से खूब संतप्त हो चुकी थी। परंतु देखिए, इन दोनों की चार आँखें होते ही सब दृश्य ऐसे बदल जाता है, जैसे किसी चतुर मांत्रिक के मंत्र-कौशल से बिच्छू के काटने से तड़फते हुए की व्यथा एक-दम मिट जाती है । जिस मान और रोष के बल पर वह नायक को बुरा-भला कहने का संकल्प कर चुकी थी, उसी मान और रोष को उसने इस प्रकार दिल से दूर कर दिया, जिस प्रकार मनुष्य किसी घृणित वस्तु का तिरस्कार सहज ही में कर देता है। जिस प्रकार लाख बहुत जल्दी ही आग के संसर्ग से गल जाती है, उसी प्रकार प्रिय के समागम से उसका भी मान तुरंत गल गया। देखिए, कुछ-का-कुछ हो गया। या तो अग्नि की तरह कोपाग्नि से प्रज्व-लित-सी हो रही थी, या दूसरे ही क्षण में नायक से मिलकर इस प्रकार शांत हुई, मानो उस पर जल-वृष्टि हो गई हो । सचमुच प्रेम की लीला निराली ही है । इसने तो बहुत-सी मानिनियों के मान इसी प्रकार गला डाले ।

अगर प्रेम पृथ्वी पर न होता, तो यह समस्त संसार कलह-

पूर्ण होता। शांति, स्नेह और सौंदर्योपासना का स्वप्न भी न आता। धन्य है प्रेम ! तेरी शक्ति महान् है। तभी तो कविजी ने कहा है कि प्रेम ही परमेश्वर है।

दूतियों की दुष्टता

मान ठन्यो जो बाल तिय, पिय सन पाल्यो चाहि ;
आँखियाँ दुतियाँ प्रेम की, मुग्ध भाव झलकाहि ।

प्रेम में मानलीला को देख-देखकर बहुत-से रसिकों के हृदय में ख़याल उपजता है कि इससे रंग में भंग पड़ता है ; यह तो प्रेम का मज़ा मिट्टी में मिला देता है, और इस कलह से प्रेमियों के हृदय अत्यंत दुःखित होते हैं । परंतु उनका यह विचार अक्षरशः सत्य नहीं है । भली प्रकार विचारने से यह सिद्धांत निर्मूल और भ्रामक सिद्ध होगा ।

देखिए, संसार में गुणों के साथ-ही-साथ अवगुण भी न हों, तो गुणों का पूरा विकाश नहीं हो सकता । अवगुणों के अवरोध से ही गुणों की शोभा बढ़ती है । अगर संसार केवल सुखमय ही होता और उसमें दुःख का नाम तक न होता, तो यह दृश्य भी आँखों को न रुचता ; क्योंकि मनुष्य का यह स्वभाव है कि एक-ही-एक स्थिति में पड़े-पड़े उसको जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है, और उसका जीने का मज़ा चला जाता है । वह तो जीवन का उद्देश्य ही भूल जाता है । यहाँ तक कि प्रकृति भी विभिन्नता का ही प्रथम पाठ पढ़ाती है ।

अतएव गुणों के उत्कर्ष के लिये अवगुणों का विरोध अत्यावश्यक है। क्या आपको ज्ञात नहीं है कि काले के साथ सफ़ेद रंग ज्यादा सफ़ेद प्रतीत होता है। परंतु अगर वही सफ़ेद रंग और किसी विरोधी रंग के साथ नहीं है, तो उस पर आँख भी नहीं जमती। नैयायिकों ने तो उच्चकोटि के अनुमितिजन्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये सपक्ष और विपक्ष का होना अत्यावश्यक समझा है, अन्यथा उस ज्ञान को वे भ्रमोत्पादक समझते हैं। अवगुणों की आग में होकर गुणरूपी स्वर्ण और ज्यादा चमकने लगता है। उसमें नई आभा आ जाती है। यही कारण है कि विषय-विकारों से आवृत रहकर उनके धक्कों को सह-सहकर जो मनुष्य सन्मार्ग पर आरूढ़ होता है, वही पूर्णरूप से संसार-यात्रा में सफलता प्राप्त करता है। इसीलिये तो भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन को उपदेश दिया था कि संसार के विषयों से घिरे रहकर, उनमें से निकाले हुए सत्पथ पर चलने को ही सच्चा मोक्ष और ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं। इसी का नाम तो कर्म-योग है। उनका यह आशय इन श्लोकों से प्रकट होगा—

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ;
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ;
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।

अतः सिद्ध हुआ कि मान कोई बुरी बला नहीं है। यह न होता तो प्रेमियों को प्रेमलोला में मज़ा ही न आता और साहित्यज्ञों को प्रेम की विशेषताएँ ही न मालूम होतीं। मान-गर्विता नायिका के मान-खंडन के बाद मिलन से नायक को जो आनंद होता है, उस पर संसार का सब आनंद न्योछावर है।

हमारी नायिका मुग्धा हैं। उन्होंने बात-ही-बात में बिना सोचे-समझे नायकजी से मान ठान लिया है। अतः वे कोप-कर नायकजी से मिलना नहीं चाहती हैं। वे उनसे दूर-ही-दूर रहती हैं। परंतु क्या आप समझते हैं कि उनका यह कोप चिरस्थायी होगा? नहीं-नहीं, नायिका ने यों तो ऊपर से मान कर रक्खा है, परंतु हृदय में नायक के प्रति गाढ़ प्रेम है। एक बार मान कर लिया, तो उसे थोड़ी देर तो निबाहकर नायकजी को यह ज्ञात करा देना चाहिए कि इस प्रकार की अनबन से उन्हीं को दुःख होगा। अतः वे फिर कभी ऐसा न करें, जिससे नायिका को मान की शरण लेनी पड़े। यह सब सोचकर नायिका हठ-पूर्वक मान को, जितना निभे, निभाता चाहती है। परंतु हृदय का आंतरिक प्रेम, थोड़ी देर की रुकावट में ही हृदय को लबालब भरकर, आँखों की ओर से निकला चाहता है। वह बहुत चाहती है कि मान रक्खूँ और प्रेम को प्रकट न होने दूँ, परंतु इतने पर भी प्रेम आँखों

में झलकता नजर आता है । जिस प्रकार प्रेमी दंपति की दूतियाँ एक दूसरी की चुगली करने में और गूढ़ रहस्य बताने में प्रवीण होती हैं, उसी प्रकार इन आँखों ने भी दूतियों का कार्य किया। नायिका के हृदयस्थ प्रेमभाव को नायकजी से कह सुनाया । नायक रहस्य समझ गए। वे तो विरह-वेदना से इतने व्यथित हो चुके थे कि अपनी भूल स्वीकार कर नायिका से कविवर जयदेव के शब्दों में—
"स्मरगरलखण्डनं मम शिरसिमण्डनं; देहि पदपल्लवमुदारम्"
प्रार्थना कर हार मानने ही वाले थे कि इसी समय उनकी लाज नायिका की नेत्ररूपी दूतियों ने रख ली। नायिका पूर्ण विजय प्राप्त करने ही को थी कि उसकी विश्वासघातिनी दो सेना-ध्यक्षिणियाँ विपक्षी से जा मिलीं। फिर तो उसका हाल वही हुआ, जो ब्लूचर के विपक्षियों से मिलने पर नेपोलियन का वाटर्लू के मैदान में हुआ था । नायकजी ने आर्द्र होते हुए हृदय को कड़ा कर लिया। अंत में परिणाम यह हुआ कि नायिका को अपना मान छोड़कर नायक के सामने हार माननी पड़ी। दोनों में प्रेम-संधि हुई। हरजाने के रूप में नायिका को चुंबन देना पड़ा। नायक की खूब चेती। उनका भाग्य अच्छा था, जो इस प्रकार अनपेक्षित सफलता प्राप्त हुई।

अचानक आगमन

न्हान चली जब तीय, जानि चले पियहू तहाँ ;
प्रकट अचानक कीय, आँख मूँदि लज्जा ढकी ।

चित्र स्वाभाविकता का नमूना है। ईश्वर ने प्रेमियों के आश्चर्य-जनक व्यापार बनाए हैं। जिसको सब संसार बुरा समझे, उसी कार्य में उनको अनोखा आनंद मिलता है। इनके तो रंग-ढंग ही निराले हैं। देखिए, इसी निरालेपन का नमूना उपरोक्त सोरठे में भी दरसाया गया है। यह स्पष्ट दिखाया गया है कि किस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका को लज्जित करने में ही आनंद पाते हैं। वे तो ऐसे शुभ अवसरों की खोज में लगे रहते हैं कि कहीं प्रियाजी को अरक्षित दशा में पा जायँ, तो उनको लज्जित कर, उनकी उस समय की दशा से आनंदलाभ करें। अनोखा व्यापार है। क्या कहीं किसी के दुःख से भी सुख हो सकता है? परंतु पाठक, प्रेम-साम्राज्य में कोई बात अनोखी नहीं है। वहाँ तो ऐसे-ऐसे लाखों वृत्त देखने को मिलेंगे। वहाँ की तो माया ही और है। बेचारे संसारी जीव उसका रहस्य क्या समझें।

सुनिए, प्रेम के ठेकेदार रसीले श्रीमुरलीधर भी बहुत दिन से अवसर ताक रहे थे कि राधिकाजी के साथ भी इसी प्रकार मन-

मानी करके उनको लज्जित करें। प्रयत्न किया हुआ निष्फल नहीं जाता। आख़िर बहुत प्रतीक्षा के बाद वह समय आ ही गया। राधाजी एक दिन चारों ओर वृक्षों से घिरे हुए सरोवर के एक सर्वतः सुरक्षित स्थान में स्नान करने गईं। कृष्णजी भी वहीं जा पहुँचे और कुंज की ओट में छिप रहे। ठीक मौक़ा देखने लगे। भोली-भाली राधिकाजी चतुर-शिरोमणि विहारी की यह चाल थोड़े ही जानती थीं। सहज ही में, भय की कोई आशंका न कर, वस्त्र उतारकर नहाने लगीं। ख़ूब नहा चुकीं, तब बाहर निकलीं और वस्त्रों के पास आईं। इधर कृष्णजी ने भी अच्छा मौक़ा जानकर अपने आपको लता-कुंज की ओट से प्रकट किया। राधिकाजी ने नज़र उठाकर देखा, तो सामने नटवर नंदलाल खड़े हैं। उनके मुख पर मृदु मुसकान की झलक और आँखों में प्रेम का मस्त भाव है। राधाजी सहम गईं। जी में यह आया कि लज्जावश वहीं गड़ जातीं। परंतु क्या करें? आख़िर स्त्रियों के स्वाभाविक उपाय की शरण ली। लज्जा के उत्पत्तिस्थान आँखों को मूँद लिया। प्रिय पाठक, इन आँखों के मूँदने में जो अनुपम रस भरा है, उसका अनुभव कर आनंद लूटिए। इसका तो वर्णन किया ही नहीं जा सकता। कृष्णजी का मनोरथ सफल हुआ। उनको संपूर्ण आनंद मिल गया। वे अपने भाग्य को धन्य-धन्य कहने लगे

और बार-बार मन में यही प्रेरणा करने लगे कि फिर ऐसा अवसर प्राप्त हो। बलिहारी है नाथ ! अच्छी चाल चली। पर पाठक, ध्यान रखिए, कहीं आप भी इसी चाल का अनुसरण न करने लग जाइए। अन्यथा बेचारी नायिकाओं का बुरा हाल होगा। यह तो उन रसिक-शिरोमणि को ही शोभा देता है।

पुत्र-प्रेम

सुतमुख देख्यो चाहि तिय, प्रकट सु आशय कीन्ह ;
कंत कह्यो रहु बावरी, औरे हित वय दीन्ह ।

स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल, भोला-भाला और शुद्ध होता है। वह उस दर्पण के सदृश प्रतिबिंबग्राही होता है, जिसमें जो प्रतिमा उसके सामने आ जाती है, उसी का हूबहू वैसा-का-वैसा चित्र वहाँ खिंच जाता है। हमारी नायिका भी एक दिन पुत्रवती स्त्रियों के साथ बैठी-बैठी सोचने लगी—"मेरे भी पुत्र हो जाता, तो मैं भी इन बहनों की तरह सौभाग्यवती हो जाती।" सोचते-सोचते अपनी पुत्रहीनता के कारण वह अपने भाग्य को कोसने लगी। बाद में अपने हृदय की इस बात को नायकजी के सामने प्रकट की। नायकजी ने समझ लिया कि हो-न-हो इसकी यह आत्मग्लानि और स्त्रियों को पुत्रवती देखकर पैदा हुई है। इसने तो बालहठ की तरह इस हठ को धार लिया है। अगर अपने सुख-दुःख, भले-बुरे का विचार करती, तो कदापि ऐसा हठ न ठानती। अभी तो इसकी अवस्था ही ऐसी है कि इस प्रकार की अभिलाषा करना, सब सुखों को लात मारना है। निदान इन्होंने उसे समझाने की ठानी, और ऊँचा-

नीचा लेकर कहा कि ए बावरी ! तूने बिना सोचे-समझे इस इच्छा को हृदय में स्थान दिया है। अगर ज़रा भी सोचती, तो तुझे यह मालूम हो जाता कि यह नववय, पुत्रोत्पत्ति के लिये उपयुक्त समय नहीं है। यह तो सुख भोगने का सुअवसर है।

यह तो हुआ उनका उपदेश नायिका को। परंतु पाठक ! ज़रा सोचिए, तो आपको मालूम होगा कि इस उपदेश में परोपकार की अपेक्षा स्वार्थसिद्धि का अंश ज़्यादा है। क्योंकि ज्यों ही नायिका ने गर्भ धारण किया, त्यों ही बेचारे नायकजी की प्रिया-मिलन की सुख की घड़ी का कुछ समय के लिये अंत हुआ समझो। दूसरे, पुत्र के पैदा होने पर तो नायिका का जो प्रेम पहले केवल नायक पर ही रहता था, वह अब पुत्र की ओर बँट जायगा। यह तो नायकजी ही का काम था कि एक समझदार परिणामदर्शी पुरुष की तरह—"एक पंथ दो काज" वाली युक्ति सोच निकाली। उधर नायिका की इच्छा का समाधान किया, तो इधर स्वार्थसाधन में भी कुछ कमी न रक्खी।

दर्द की दवा

सरपीड़ा मिस बोलि तिय, मस्तकहीं चँपवात ;

अँचल ओट ते निरखि कुच, हियरे अति हुलसात ।

आजकल संसार की प्रगति पर विचार करने से यह प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है कि ज़माना बड़ा टेढ़ा है। चारों ओर छल, कपट, धोखेबाज़ी इत्यादि का जाल-सा फैला हुआ नज़र आता है। आश्चर्य तो तब होता है, जब देखते हैं कि ऊपर से मनसा वाचा कर्मणा शुद्ध दीखनेवाले साधु बाबा ही सबसे ज़्यादा चालाक, कपटी, धूर्त, धोखेबाज़ और विषयग्रस्त निकलते हैं। अब गुज़र कैसे हो। विश्वास पृथ्वी पर से उठा चाहता है। जहाँ दृष्टि डालें, वहाँ ही बगुलाभगत, कपट-जाल फैलाए, ऊपर से साधुवेश बनाए दिखलाई देते हैं। यहाँ तक कि जंतुओं तक में भी ऐसे कपटी जीवों की कमी नहीं है। मकड़ी ही को लीजिए। कैसा तुच्छ जानवर है! पर कपट देवता ने इसके हृदय में आसन जमा रक्खा है। देखिए, कैसा सुंदर, मनमोहक, भड़कीला जाल बनाकर, उसके एक कोने में दुबककर बैठी हुई, मन में यह माला फेरती रहती है कि कहीं कोई भोली-भाली मक्खी उसमें आ फँसे, तो पौ बारह पच्चीस हो जायँ। मक्खियाँ

बेचारी ठहरीं शुद्ध और निष्कपट हृदय। उस चमकीले जाल को देख, उसकी छटा पर मुग्ध हो, उसकी भूलभुलैयाँ में घुस ही जाती हैं। फिर जो मक्खी की हालत होती है, और मकड़ी को जो हर्ष होता है, उसका अनुमान आप ही कर लें।

हूबहू इसी पाठ की नक़ल कर हमारे नायकजी ने भी अपनी कार्य-सिद्धि के लिये युक्ति निकाली। आप पलँग पर पड़े हैं, नींद नहीं आती। आँखों के सामने प्रिया के सुघर पूर्णोन्नत कुचयुगल चक्कर लगा रहे हैं। उनको देखने की प्रबल इच्छा है, परंतु अपना यह आशय प्रकट कैसे करें? थोड़ी देर सोचने पर एक युक्ति सूझी। कपट-पूर्ण संसार में तो आप रहते ही थे। फिर युक्ति भी कपटमय होती, तो आश्चर्य ही क्या था। मस्तक-शूल का बहानाकर, पड़े-पड़े कराहने लगे। जाल ऐसा बिछाया कि नाग-पाश को भी मात कर गया। अगर और कोई बीमारी होती, तो लक्षणों से भी पहचानी जा सकती थी। परंतु यहाँ तो मस्तक-पीड़ा है। नायिका से अपने प्रिय की यह दशा देखी न गई और वह झट उनके पास आकर उनका मस्तक दबाने लगी। बेचारी भोली भाली इस छल को न जानकर कपट-जाल में फँस गई। भला वह क्या जानती कि यह तो नायकजी का कपट है, जिसकी ओट में वे अपना कुचदर्शन-रूप कार्य साधना चाहते हैं। उसके

तो हृदय में प्यारे की व्यथा देख-देखकर वेदना होती थी। परंतु जरा इन भोले बने हुए नायकजी की कार्यवाही तो देखिए। नायिका का अंचल तो उनके मुख पर पड़ा ही था। बस उसी की ओट से खूब मन भरकर उन कुच-पहाड़ों की निराली शोभा देखने लगे। अब क्या था। वेदना एकदम मिट गई। हृदय में शांति की ठंढी लहर उठ गई। शोभा को निरखते ही गए। आखिर नायिका ने ही अपने कार्य को बंद कर दिया।

प्रेमपगी प्यारी

जल भरि आवति नार, मारग में पीतम मिले ;
दीन्ह गगरिया डार, प्रेमपगी ह्वै डगमगी।

लज्जा स्त्रियों में स्वाभाविक है। लज्जा स्त्रियों का आभूषण है। इसके विना उनके और सब गुण धूल के समान हैं। इस दोहे में कवि ने प्रेम के साम्राज्य में, लज्जा का भावमय चित्र खींचा है। भाव यह है कि एक दिन नायिका सरोवर से जल भरकर घर की ओर लौट रही थी। रास्ते में सामने आते हुए आजकल की नई रोशनीवाले नायकजी, हाथ में छड़ी लिए, तिरछी टोपी धरे, रिस्टवाच धारण किए और आँख पर माइनस ज़ीरों का चश्मा चढ़ाए, फैशनेबुल बाबू साहब के वेश में मिले। नायिका ने इनको देख लिया और विचार करने लगी कि इनको न-जाने कैसा भूत सवार है कि जहाँ मैं जाऊँ, वहाँ आप भी आ हाज़िर होते हैं। जहाँ-तहाँ मुझे लज्जित करते हैं। देखूँ ये और किसी रास्ते पड़ जाते हैं या नहीं। परंतु नायकजी ठहरे पूरे तालीमयाफ़्ता। उनको और क्या चाहिए था ? इसी मिलन के उद्देश्य से तो ये बन-ठनकर घर से निकले ही थे। अतः छड़ी घुमाते-घुमाते उसी ओर चल पड़े। जहाँ पर मिलाप हुआ, उस जगह का दृश्य तो

देखते ही बनता है। इधर तो बेशरमी का बाना पहने नायकजी आए; उधर लज्जा और स्त्रियोचित संकोच से कंपायमान गातवाली, सिर पर जल-पूर्ण गगरी रक्खे, नायिका भी आ पहुँची। पास आने पर दोनों की आँखें चार हुईं। प्रेम ने दोनों के हृदयों को जकड़कर प्रेम-सूत्र में बाँध दिया। नायिका के शरीर में इस मिलन से पैदा हुई जो धकधकी-कँपकँपी शुरु हुई, तो उसी आवेश में मस्तक की गगरी डग-मगी और स्थानच्युत हो धरनी पर जा गिरी। बेचारी के वस्त्र सब भीग गए। भीग जाने के कारण झीने वस्त्र अंग से सट गए और उनके अंदर से नायिका का सुवर्ण-वर्ण गात अद्भुत आभा दिखाने लगा। अब सच्ची हालत मालूम हो गई। पहले अगर कोई नायक-नायिका के इस अभिनय को न भी देख पाता, तो अब तो अच्छा मौक़ा मिल गया। नायिका शर्म के भार से इतनी दब गई कि कुछ समय तक वहाँ से हिलना तक मुश्किल हो गया। नायकजी ठहरे बेशर्मों के बादशाह। वे तो एक चतुर दर्शक की तरह इस दृश्य को देख-देखकर मज़ा लेने लगे। परंतु नायिका का हाल बुरा हुआ। जिस लज्जा के द्वारा उसने अपने आपको इस अवसर पर रक्षित रखना चाहा था, उसी ने प्रेम के बहकाने में आकर उल्टी उसकी हँसी उड़वा दी। सच है, बुरे वक़्त में कोई किसी का साथ नहीं देता।

सरोज पर शशि

नीलांबर में राधिका, लई कृष्ण ने अंक ;
जमुना जल उत्पलहि थित, मनहु मयंक सशंक ।

राधा नीले रंग की सुंदर साड़ी पहने हुए है। सोलह शृंगार किए खड़ी है, मानो मोतियों की लड़ी है। बड़ी ही सुंदर दीख पड़ती है। इतने ही में व्रजविहारी कृष्ण उधर आ निकले। राधा का मुख-मंडल मनमोहन को आते देख मधुर मुसकिराहट की आभा से आलोकित हो गया। दोनों ने एक दूसरे को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा। सुख की सीमा न रही। दोनों प्रेम के प्रवाह में बहने लगे। कृष्ण ने प्रेम से राधा को गोद में उठा लिया। कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो कालिंदी में खिले हुए नीले कमल पर सशंक चंद्र बैठा है। कृष्ण तो कालिंदी हैं। राधा की नीली साड़ी नीला सरोज है। उस साड़ी में से राधा का मुख ऐसे प्रतीत होता है, मानो सशंक चंद्र नीले कमल पर बैठा है। शशि सशंक इसलिये बैठा है कि वह जानता है, सरोज सरस्वती का आसन है। इसीलिये तो वे 'कमलासिनी' कहलाती हैं। अतः चंद्र को ख़याल है कि कहीं सरस्वती देख लेंगी, तो नाराज़ हो जायँगी। सो डरते-

डरते बैठा है। उधर स्त्रियोचित लज्जा के कारण कृष्ण की गोद में राधिकाजी सशंक प्रतीत होती हैं। अतः राधा के तत्कालीन लज्जा-पूर्ण मुख को सशंक शशि की उपमा सच-मुच बड़ी ही। अनूठी है। कविजी, तो मालूम होता है, ऐसी-ऐसी प्रेम-पूर्ण अनूठी झाँकियों के खूब दर्शन करते हैं।

लजवंती लता

जमुना न्हाइ अवेल, भीगे पट घर आत ही ;
छुवत आँगुरी छैल, लजवंती तरु जिमि भई ।

सबेरे का सुहावना समय है। शीतल सुगंधित पवन मंद-मंद अठखेलियाँ करता हुआ चल रहा है। हमारे अलबेला छैला भी वायु सेवनार्थ कालिंदी के कूल की ओर चल पड़े। वहाँ क्या देखते हैं कि स्वर्ण-लता-सी सुंदर अपनी प्रेयसी यमुना में स्नान कर रही है। उसके रूप-लावण्य को देखकर आप ख़ुश हो गए और लगे घूर-घूरकर उसे देखने। भीगी हुई साड़ी में से उसके गात के करामात ने आप पर ऐसा आघात किया कि भ्रमण को मार लात, आप इस घात में लगे कि कोई बात करके गोरी के गात के हाथ लगाया जाय। आप इसी उधेड़-बुन में लगे हुए थे कि क्या देखते हैं कि नायिका स्नान करके भीगी हुई साड़ी ही में अपने घर की ओर चल पड़ी। आप भी उसके आगे-आगे चुप-चाप चल पड़े, मानो आपको उससे कोई सरोकार नहीं है। जब तक मौक़ा नहीं मिला, आप कुछ फ़ासले से बिलकुल बेपर-वाही से नायिका के आगे-आगे चलते रहे। हाँ, बीच-बीच में चतु-राई से आप टेढ़ी नज़र से इस बात को देखते जाते हैं कि

नायिका पीछे से आ रही है कि नहीं। चलते-चलते एक ऐसा कुंज आ गया कि जहाँ पर और कोई नहीं दीख पड़ता था। तुरंत ही आपने अपनी चाल धीमी कर ली; जिससे नायिका उनको पहुँच सके। ज्यों ही नायिका पास से निकली, त्यों ही फौरन् लपककर आपने उसके अंग को उँगली से छू दिया। छूते के साथ ही नायिका लजवंती-लता की तरह बिलकुल अंदर-की अंदर सिमट गई।

इस छूने में क्या आनंद है! इसको वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें लजवंती को छूने का कभी इत्तिफ़ाक़ पड़ चुका है। हमारे कई एक वक्र दृष्टिवाले रंगीन चश्मा धारी साहित्यिक महापुरुषों ने महाकवि बिहारीलाल को भी इन्हीं रँगीले नायक महोदय के रूप में देखकर उनका रँगीला स्वरूप चित्रांकित किया है।

भीगी हुई साड़ी में से गोरे गात को देखकर किसकी तबयित नहीं गुदगुदाने लगती। इस गुदगुदी के आनंद के लिये ही तो लोग विलायती बारीक़ वस्त्रों से अपनी स्त्रियों को सजाते हैं, जिससे उनको इन अबलाओं के अंग-प्रत्यंग के दर्शन होते रहें। बेचारे ऐसा करने को लाचार हैं, क्योंकि अपनी तीव्र दृष्टि को तो आधुनिक शिक्षा को अर्पण कर चुके हैं। अतः 'शॉर्ट साइटेड' हो गए हैं। ऐनक धारण करके जैसे-तैसे

अपनी आँखों की लाज रखते हैं। अगर अपनी प्रिया को स्वदेशी खादी की साड़ी पहनावें, तो गोरे गात की करामात कैसे देखें। वे तो बारीक़ वस्त्रों में से भी उस गात की शोभा बड़ी मुश्किल से चश्मे के सहारे से निरख पाते हैं।

पीपल का पात

प्रेमदान माँगत पिया, तिय नहिं छाँह छुवात ;
नव पीपल के पात ज्यों, थरथर काँपत गात ।

प्रेमोन्मत्त नायक नायिका से प्रेम-दान मागते हैं । नायिका ठहरी बिलकुल नवोढ़ा । अतः स्वभावतः सकुचाती है । फिर भला इस प्रस्ताव को कैसे मानती । मानना तो दूर की बात है, वह इसको सुनकर ही दूर रहती है; छाँह तक नहीं छुवाती। छाँह भी कैसे छुवाती ? उसके मन में तो यह भय समा रहा है कि कहीं ये मेरी छाँह को ही न पकड़ लें । शायद वह— "तिय-छवि छाया ग्राहिणी, गहे बीच ही आय ।" विहारी के दोहे को स्मरण कर-कर यह सोचती होगी कि जिस प्रकार किन्हीं-किन्हीं जीवों में छाया द्वारा ग्रहण करने की शक्ति होती है, उसी प्रकार वही शक्ति नायक में भी हो । इधर तो इस भय से व्याकुल खड़ी-खड़ी बचाव का उपाय सोच रही है। उधर जब तब मौक़ा पाकर नायक के कांत वपु की ओर आँख चुराकर देख लेती है, तो समस्त शरीर में एक आंतरिक बिजली-सी दौड़ जाती है । उसे यह नहीं मालूम होता कि वह किस फेर में पड़ी है । परंतु कामदेव मौक़ा देखकर उस पर जादू कर

देते हैं। भय एक ओर खींचता है, तो अलक्ष्य रीति से और ज्यादा प्रबलता के साथ प्रेम दूसरी ओर खींचता है। इस खींचातान में बेचारी नायिका की दशा अत्यंत शोचनीय हो रही है। प्रेम भय पर विजय पा रहा है और उसे अपनी ओर खींच रहा है। समय-समय पर इन प्रबल विपत्तियों के आक्रमण के धक्कों को खाकर वह काँप उठती है। इस कंप ही का कविजी ने बड़ी कुशलता के साथ कथन किया है। इस दशा में वह ऐसी काँपती है, मानो पीपल वृक्ष का नवपात थर-थर काँप रहा है। कैसी स्वाभाविक उक्ति है।

पाठक! अगर आपने कभी पीपल-वृक्ष के नूतन पत्ते को हवा से काँपते देखा है, तो इस दृश्य का यथार्थ अनुभव कर आपकी आत्मा फड़क उठेगी। फिर सुकुमारता और स्निग्धता में भी यह पीपल का नवपात नायिका के यौवनोचित सौकुमार्य के समान ही होता है।

चारु चंद्रिका

सुमुखी सँग मरुभूमि की, खिली चंद्रिका चारु ;
तड़के की शीतल पवन, तिन्हें न अन्य विचारु ।

मरुस्थल के निर्मल नभ की चारु चंद्रिका खिली हुई हो; संग में सुंदर नायिका हो और प्रातःकाल की शीतल पवन चल रही हो, तो फिर किसको दूसरी बात का ख़याल आ सकता है।

मरुस्थल की रातें वास्तव में बड़ी अच्छी होती हैं । स्वर्ग का सा सुख प्रतीत होने लगता है। आकाश बिलकुल साफ़ होता है। सृष्टि-रचना के पहले दिन जैसा वह दिखलाई दिया होगा, वैसा ही नया ज्ञात होता है। नीलम के झरोखे में से चंद्र झाँकता रहता है। उसकी निर्मल चाँदनी ऐसी शोभा देती है, मानो किसी ने आकाश को चाँदी का झीना चीर ओढ़ा दिया हो। रेगिस्तान में रेत के कण बहुत जल्द ठंडे हो जाते हैं। शीतल पवन धीमी-धीमी अठखेलियाँ करता हुआ चलता रहता है। उसके थपेड़े इतने अच्छे लगते हैं कि बिछौना छोड़ने को तबियत नहीं चाहती। बीकानेर की चाँदनी रातों का जो मज़ा लूट चुके हैं, वे इसकी ताईद करेंगे। इन साज-सामानों का ही

मौजूद होना एक बड़ा भारी लुत्फ़ है। फिर चंद्रमुखी और साथ हो, तब तो कहना ही क्या है। बस, समझ लीजिए कि सोने में सुगंध हो गई। फिर अन्य विचार की दाल कैसे गल सकती है। वाक़ई में वैकुंठ की बहार है।

भारी भ्रम

चटक चाँदनी चैत की, सरजल करत विहार ;
राधा श्यामहिं श्याम तहिं, ढूँढ़ि न पावत पार ।

मधुमास की चटक चाँदनी रात है । आकाशरूपी नीले और उज्ज्वल जल में तारकाओं के साथ चंद्र को विहार करते देखकर राधामाधव के मन में भी जल-केलि करने की कामना हुई जान पड़ती है। वे नीले और लाल कमलों से आच्छादित सरोवर में जल-क्रीड़ा करने गए हैं।

परंतु पाठक ! यह कैसा रहस्य है ? वे तो एक दूसरे को खोज रहे हैं। नहीं-नहीं। खोजते-खोजते हैरान तक हो गए हैं, परंतु पता नहीं चलता। आप चाहे जो इसका कारण समझें। हमारी समझ में तो यही आता है कि राधा तो लाल कमलों में और कृष्ण नीलोत्पलों में ऐसे मिल गए हैं कि एक दूसरे को दिखाई तक नहीं देते। परंतु आख़िर जाते कहाँ ? कभी-न-कभी ढूँढते-ढूँढते कृष्ण लाल और राधा नीले कमलों में आते, तब अवश्य पता लग जाता। आप कहेंगे कि कृष्ण लाल कमलों पर भौरों की तरह मालूम होने से शायद राधा को न दिखाई देते। परंतु वे तो राधा को देख लेते ! वाह ! आपने राधा को

बिलकुल बेवक़ूफ़ ही समझ लिया है क्या ? जनाबेमन ! क्या वह इतना हो नहीं जानतीं कि रात्रि में कमलों पर भ्रमर नहीं होते। आप कहेंगे, यदि ऐसा ही है, तो दोनों प्रकट हो ही जायँगे। परंतु प्रकट हो कैसे जायँगे, जब राधाजी तो चंद्रज्योति में मिल जाती हैं और घनश्याम सरोवर के श्याम और गहरे जल में ! केवल एक उपाय है, जिससे कृष्ण तो राधाजी को नहीं देख सकते, परंतु हाँ, अलबत्ता वे उनको देख सकती हैं। यदि सरोवर में ही मिलना है, तो कृष्ण बोले, क्योंकि राधिकाजी का कल-कंठ तो कोयल से मिलता है; और यदि बाहर मिलना है, तो राधाजी अपने नेत्रों को काम में लाएँ और जल से दूर कृष्ण को प्रत्यक्ष देखें। विरह-वेदना का निवारण करना मुश्किल है, तो बेचारे विहारी ही के लिये, क्योंकि राधाजी को अदृश्य करनेवाली ज्योत्स्ना तो, क्या जल और क्या स्थल, सर्वत्र व्याप्त है। कैसा अपूर्व एकीकरण है—

> बाम पै नंगे न जाना तुम शबेमहताब में ;
> चाँदनी छू जायगी मैला बदन हो जायगा।

स्नेह-शंका-सम्मिलन

एक दिना पिय ने कही, करन केलि विपरीत ;
नतमुख हो विहँसी प्रिया, नयनन में भय प्रीत।

एक दिन रसिक नायक ने विपरीत रति करने की इच्छा नायिका से प्रकट की। नायिका सुनकर मुख नीचा करके मुसकिराने लगी। उसके नेत्रों से भय और प्रीति दोनों प्रकट हो रहे थे।

रति हो या और कुछ हो, विपरीत कार्य करते प्रत्येक प्राणी को भय प्रतीत होता है। संभव है, उधर गुरुजनों आदि का भय हो कि वे देख न लें। इधर नायक के प्रति हार्दिक प्रेम है, उधर रति से प्रीति होना स्वाभाविक है ही, तिस पर भी नायक कर चलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट करना। अतः नायिका ने नेत्रों में प्रीति झलकाकर इस बात का पता दिया कि वह तो पतिदेव की आज्ञा पालन करने को उद्यत है; किंतु भय के कारण लाचार है। नीचा मुख करके नायिका ने लज्जा प्रकट की। इस प्रकार के प्रस्ताव पर लज्जा का होना स्वाभाविक ही है। मुसकिराकर नायिका ने प्रकट किया कि वह तो तैयार है, किंतु लज्जा के कारण विवश है। आँखें

दिल का आईना हैं। जो भाव दिल में होते हैं, उनका प्रतिबिंब आँखों में पड़ने लगता है। नायिका का लज्जा के कारण नत-मुख होना भय के रूप में और मुसकिराना प्रीति के रूप में आँखों में झलकने लगा।

कदंब-कुंज

केलि कामिनी कंत करि, सोह कुंज के द्वार ;
मनहु आज एकत किए, रवि शशिहीं तहँ मार ।

सुगंधित और सुकामल लतिकाओं से आच्छादित सघन और ठंढा कदंब-कुंज किसके मन को मुग्ध नहीं करता ? अब भी एसे कुंज ब्रज में पाए जाते हैं; परंतु आनंदकंद श्रीकृष्ण-चंद्र के ज़माने में इन यमुना-तट के कुजों की कुछ निराली ही छटा थी। इसका कारण गोपाल की मधुर मुरलिका की अमृतमय तानों की वर्षा ही प्रतीत होती है। इस अमृत-सिंचन से निर्जीव पदार्थ भी डहडहा उठते थे।

हमारे कवि एक ऐसे ही कुंज से विहार करने के बाद उसके द्वार पर खड़े हुए, कुंजविहारी और उनकी प्रियतमा राधा का वर्णन कर रहे हैं। सघन कुंज नील गगन-सा जान पड़ता है। ज्योतिस्वरूप कृष्ण अपनी प्रभा के प्रभाव से प्रभाकर ही प्रतीत होते हैं। मुग्ध राधिकाजी की मृदु मुसकान-मय मधुर मूर्ति, अपना मीठा प्रकाश फैलाती हुई मयंक-सी मालूम होती है। बहुत दिनों से कोशिश करने और बाणों की बौछार से जगत् में प्रलय मचाने के पश्चात् कहीं मदन-

देव, सूर्य को उनकी प्रिया इंदुमती के साथ मिलाने में, सफल हुए हैं। धन्य कामदेव, तुमने कभी न मिलने की आशा रखनेवाले प्रेमियों को भी मिला दिखाया !

शिथिल सरोजिनी

घनी केलि करि बाल तिय, पिय बिछुरत इमि सोहि ;
शिथिल कमलिनी होइ निशि, अलसानी जिमि होहि ।

प्रेममिलन और रत्यंत सा क्या ही विनोदपूर्ण वर्णन है। नायिका मुग्धा है। अतः संसोच ही सा अंश उसके स्वभाव में ज़्यादा है। उसको रति-केलि की अत्यंत इच्छा तो है, परंतु संकोच-वश नायकजी के समक्ष प्रकट नहीं कहती। रात्रि में दंपती का समागम हुआ। नायिका तो चाहती ही थी, उसकी तो यह इच्छा पहले ही से थी। जब वही इच्छा विना किसी प्रार्थना के पूर्ण होने को आई, तो वह मारे हर्ष के फूली न समाई, और उसी उमंग में केलि भी घनी की। जब बिछुड़ने का समय आया, तब का वर्णन कविजी किस चातुर्य से करते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो सारे दिन अपने प्रियतम प्रभाकर से प्रेम-केलि कर पद्मिनी उनसे बिछुड़कर अब रात्रि में शिथिल पड़ी है।

यह तो स्वभाव-सिद्ध ही है कि जब किसी की उत्कट इच्छा विना विशेष प्रयास किए ही पूरी हो जाती है, तब इच्छापूर्ति के पश्चात् उसे वह आनंद मिलता है,

जिसमें मग्न होने पर किसी चीज़ की चिंता, चेतनता और कार्य करने की इच्छा नहीं रहती। उसमें विचित्र प्रकार की शिथिलता आ जाती है, और उस समय का उसका आलस्य भी आनंददायी होता है। यही हाल नायिका का था। जिस प्रकार प्रियतम पतंग के साथ मिलन-रूपी अभिलाषा-पूर्ति के बाद कमलिनी शिथिल हो गई, उसी प्रकार वह भी अपना अभिमत पूरा कर शिथिलता, आलस्य और निश्चेतनता से शोभा देने लगी। धन्य हैं वे सुंदरियाँ, जिनको इस शिथिलता का अनुभव होता है। यह तो उन्हीं के भाग्य में लिखा है, जो प्रेम का रहस्य समझ चुकी हों। एक कवि तो इसी शिथिलता पर लट्टू हो जाते हैं और चक्कर खाते-खाते ही बोल उठते हैं "............सुरत मृदिताहि बाल ललना; तनिम्ना शोभन्ते" इत्यादि।

धन्य है प्रेम! शिथिलता जैसे आलस्योत्पादक अवगुण को भी गुणों का सरताज बनाना तुम्हारा ही कार्य है।

नेह में नीति

बिरह बिथा लखि व्यथित ह्वै, बिछुरत तिय दुख पाय ;
का कह अलि ! कहि फेरि मुख, निरखत कंतहिं जाय ।

बिछुड़ने के पहले नायक और नायिका का मिलन हो रहा है। नायिका की सखियाँ किसी एकांत स्थान में बैठी हैं। प्रेम-मिलन जब हो चुका और बिछुड़ने का समय आया, तो नायिका के हृदय को अत्यंत दुःख हुआ। वही नायिका, जो थोड़े समय पहले अपने प्रिय से मिलकर सब दुःख भूल गई थी, अब बिछुड़ते समय भविष्य की विरह-व्यथा का स्मरण कर, उस भयावने दृश्य को आँखों आगे रखकर विदारित-हृदय हो रही है। उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय है।

एक ख़याल होता है कि अगर प्रभु विरह न बनाते, तो उनका क्या बिगड़ता ? क्या उनको प्रेमियों के इस दुःख में इतना मज़ा मिलता है, जो उनको इतना असह्य कष्ट देते हैं ? विरह-वेदना की तीव्र ज्वाला तो पूर्व के सब सुखों को जलाकर भस्मसात कर देती है। इसी से तो किसी संतप्त-हृदय कवि ने कहा है—"जुदाई गर न होती तो मुहब्बत चीज़ अच्छी थी।" परंतु क्या हो, नायिका को किसी आवश्यक कार्यवश अपने मैके को जाना है।

इधर प्रेम उसके जाने में बाधा डालता है, तो उधर लज्जा उसको खींचती है। निदान वह जाने को तैयार होती है—दो-चार क़दम चलती है, परंतु अब तो प्रिय-मुख देखे विना एक पल भी उसका जीना कठिन-सा जान पड़ता है। उधर स्त्रियोचित लज्जा भी उसको अपने आपको सँभालने की प्रेरणा करती है। वह अपनी इस हालत को सखियों से छिपाना चाहती है। परंतु दर्शन की अभिलाषा भी तो नहीं रोकी जा सकती। अतः नायिका एक तरकीब सोच निकालती है। एकआध क़दम चलकर वह पीछे मुख करके 'का कह सखि', 'क्या कहती हो सखी ?'—यह बात सखियों के विना कोई प्रश्न पूछे ही उनसे पूछती है, और इसी व्याज से वह अपने प्रिय का दर्शन भी कर लेती है।

कहिए कैसी चाल चली—'आम-के-आम और गुठली के भी दाम।' उधर प्रिय-दर्शनरूप मुख्य ध्येय भी सिद्ध हो जाता है, और इधर लज्जा भी रह जाती है। और सखियाँ भी यह जान-कर ख़ुश होती हैं कि पति-प्रेम में संलग्न होने पर भी वह उनकी स्मृति को दिल से नहीं भुलाती। अच्छी नीति है।

प्रेम की प्रबलता

घिरि आए घनश्याम घर, नहिं आए घनश्याम ;
आज दिवस ठंढो तऊ, मो कहँ लागत घाम ।

वर्षा-काल है। आकाश मेघाच्छन्न है। इसी समय विरह-वेदना से व्यथित वृषभानुजा अपने प्रियतम की बाट जोहती हुई बैठी हैं। घनघोर घटा को घिर आया देख, मन में प्रिय-मिलन की इच्छा उत्कट रूप धारण कर लेती है। वे सोचती हैं कि ये श्यामघन तो आकाशरूपी नायिका से मिलने के लिये चले आए, परंतु मेरे हृदयरत्न श्रीव्रजविहारी अभी तक नहीं पधारे। क्या कारण है? इन कारे कजरारे पयोधरों तक ने आज अपने प्रेम का पूरा परिचय दिया है कि आकाश-जैसी शून्य-हृदया नायिका के पास चले आए हैं। तब क्या मेरे हृदय में ही प्रेम का लवलेश नहीं है, जो घनश्यास इस अवसर पर नहीं आए? मैं तो अपने प्रेम पर गर्व रखती थी, और निश्चय जानती थी कि कृष्ण इसके वश में हैं। मेरा तो यह ख़याल भी था कि जब चाहूँगी तब इसके द्वारा उनको बुला सकूँगी। परंतु आज मेरा वह गर्व खर्व हो गया। आज मालूम हो गया कि कृष्ण को वश करने की मेरे प्रेम में ताक़त नहीं है। नहीं तो

भला आज बादलों और आकाश-जैसी निर्जीव जोड़ी का मिलाप हो जाता, और मैं यों ही वृथा प्रतीक्षा करती रहती।

इसी प्रकार की उधेड़-बुन में राधिकाजी पड़ी हैं। वे बार-बार, रह-रहकर अपने भाग्य को कोसती हैं, धिक्कारती हैं। अपने आपको बुरा भला कहती हैं, और कृष्ण को छली जानकर उनके कपट पर रोष प्रकट करती हैं। समय बहुत ठंढा है। वर्षा की बौछार से शीतल हुई समीर शरीर को स्पर्श कर सीत्कार पैदा करती है। परंतु क्या हो? यह सब साज राधाजी पर विरुद्ध विकार पैदा करते हैं। उनको यह समय ग्रीष्म-कालीन मध्याह्नवत् गर्म मालूम होता है। शीतल समीर के झकोरे लू का काम करते हैं। रह-रहकर, अपनी वर्तमान दशा का स्मरण कर उनके दिल में प्रिय-मिलनोत्सुकताजन्य हूक उठती है, और नैराश्यद्योतक निश्वास मुख से निकलती है। तब तो एक प्रचंड तूफ़ान शुरू हो जाता है, जिसके वेग में वे विचाररूपी संसार के इस ओर से उस ओर तक उड़ती रहती हैं। वर्षा तो उनको ऐसो लगती है, मानो आकाश से आग की चिनगारियाँ बरस रही हैं। ठीक है, भर्तृहरिजी ने कहा है—"अवस्था वस्तूनि प्रथयति संकोचयति च" सब कार्य अवस्था के अधीन हैं।

कोयल की कूक

कुंजनि में ह्वै जात हौं, दीन्ह कोइलिया कूक ;
प्रिया जान को ध्यान करि, उठी हिये में हूक ।

नायिका को थोड़े ही दिन पश्चात् अपने नैहर जाना है । यह बात नायकजी को विदित है । वे जब-तब इसका स्मरण कर बड़ा दुःख पाते हैं । इसी सोच में उनका प्रतिदिन वर्ष के समान गुज़रता है । ये बहुत चाहते हैं कि वह दिन कभी न आए, परंतु प्रकृति किसका अनुशासन मानती है । दूर रहने के बजाय वह दिन बहुत नज़दीक आता जाता है । जब-जब वे प्रिया के भावी विरह का दुःखमय चित्र अपने हृत्पट पर उतार लेते हैं, तब-तब उसको देख-देखकर उन पर वज्रपात-सा हो जाता है। पर करें क्या ? आख़िर वह दिन क़रीब आ ही जाता है ।

प्रिया-विरह से संतप्त-हृदय नायक किसी प्रकार अपनी भावी विरह-व्यथा को शांत करने के विचार से उपवन-विहारों को निकलते हैं । उनका ख़याल है कि शायद ऐसा करने से उनके हृदय को थोड़ी शांति मिलेगी । परंतु क्या आपको यह मालूम नहीं है कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ अपना भला सोचकर जाते

हैं, वहाँ भी दुर्दैव उनका पीछा करता है। भर्तृहरि महाराज की कही हुई खल्वाट की कथा का स्मरण होगा, जो सूर्यातप से तप्त-मस्तक हो, ताल-वृक्ष के तले तनिक विश्राम लेने के लिये ठहरा था, और उसी समय उसके कच्ची हाँड़ी से मस्तक पर तालफल गिरा था, जिससे बेचारा भग्न-सिर हो मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तब भला दुर्दैव-पीड़ित नायकजी का कहाँ पिंड छूटता? आख़िर हुआ वही, जो होना था। वैरिन कोयल ने देवदूत बन तमाम कार्य किया। कोयल की कूक सुन कोकिल-स्वरा अपनी प्रियतमा का स्मरण कर, जो दिल में हूक उठी, तो हृदय मारे व्यथा के टूक-टूक होने लगा। फिर तो उसी विरह-वेदना की याद में व्यस्त हो मूक की तरह इधर-उधर घूमने लगे। भूख-प्यास सब भूल गई। जिधर देखा, उधर ही प्रिया की मधुर मूर्ति आँखों के आगे चक्कर लगाने लगी। रूख-रूख पर उसी कोकिल की कूक सुनने की उत्कट अभिलाषा से नज़र फेंकते, पर फिर नैराश्य आ घेरता। इसी प्रकार भटकते-भटकते सब उपवन छान डाला, परंतु चित्त को बिलकुल शांति न मिली। उलटे व्यथा और बढ़ गई। आए किसी और ही मतलब से थे, पर हुआ कुछ और ही। निदान घर लौटे।

पाठक! अब आगे के भयंकर दृश्य का आप स्वयं अनु-

मान कर लीजिए। नायिका आज ही जानेवाली है। उसके जाने पर बेचारे नायकजी का क्या हाल होगा, वह आप अनुमान की दृष्टि से देखिए। हमारी लेखनी तो इसको लिखते काँपती है। भला कोयल की कूक को सुनकर, प्रिया का ध्यान कर जिनका यह हाल हुआ, तो फिर प्रिया के चले जाने पर क्या होगा, सो तो ईश्वर ही जाने। सच है, दैव-निहत पुरुषों का कष्ट मेटना विधि के भी हाथ नहीं है।

विरही विधु

यामिनि भामिनि सँग रमत, दीन्ह विरहिनी साप ;
जाते शशि कलुषित भयो, विरही ह्वै के आप ।

पूर्णिमा का प्रताप चारों ओर छाया हुआ है। पूर्णेंदु अपनी पूर्ण-कला का प्रकाश फैला रहा है । एक विशाल अट्टालिका के उज्ज्वल चौकों पर चारु चंद्रिका की चमक निराली ही मालूम होती है । इसी भवन की एक ऊँची अटारी पर एक नवेली नारी चूने से पुते हुए चमकीले चौक पर, विना किसी पलँग या पट के, नीचे ही विरह की पीड़ा से पीड़ित होकर पड़ी है। सुधांशु का शीतल रश्मि-पाश उसके केश-पाश को छूकर गर्म ही उठता है । उसके रोम-रोम से जलती हुई विरह की ज्वाला निकल रही है। शरद्-ऋतु में भी उसकी गर्म आहें लू की लपेटों का स्मरण कराती हैं। परंतु चंद्रदेव को इसकी कुछ परवाह नहीं। वे वेचारी विरहिनी की इस विकट वेदना को देखकर भी उसका कुछ उपाय या उपचार नहीं करते, किंतु निःशंक होकर अपनी प्रिय भामिनी यामिनी के साथ रमण कर रहे हैं। उनका यह निर्दयता-पूर्ण कठोर व्यवहार भला वह विरहिनी कैसे सहन

कर सकती थी। उसने बहुतेरा रोका, परंतु आख़िर उसके मुख से धधकती हुई साँस के साथ जलता हुआ शाप निकल ही गया—"तू मेरे-जैसे विरह-वेदना से व्याकुल व्यक्तियों पर कुछ भी करुणा नहीं करता; उनके दुःख को देखकर उलटा हँसता है, इसलिये जा तू भी विरही हो जा।" उस विरहिनी के संतप्त हृदय से निकला हुआ यह शाप भला कहीं झूठा हो सकता था। उसको तो विधि तक नहीं टाल सकता। फिर यह तो बिचारा विधु ही ठहरा।

कृष्णपक्ष में चंद्र अपनी प्रिया निशादेवी से दूर रहने लगे। विरही होकर विधु दिन-दिन तनछीन मनमलीन होने लगा। विरह-ज्वाला ने भयंकर रूप धारण करके उसके हृदय को भस्म कर दिया। इसी कारण कलानाथ का हृदय-कमल कलुषित होकर काला हो गया। यही कलानाथ के कलंक का कारण है। दीन-दुखियों की दयनीय दशा पर दया न दिखानेवाले दुष्टों की यही दुःखपूर्ण दशा होनी चाहिए।

विद्युत्-विहीन बादल

पिय अजहूँ आए नहीं, सावन भादों नैन ;
झर लगाय बिन बीजुरी, बरसत हैं दिन रैन ।

विरहिनी नायिका के दोनों नैन सावन-भादों की समता करते हैं। जैसे सावन-भादों में झड़ी लग जाने के पश्चात् बिजली की चमक नहीं रहती और पानी झरता ही रहता है, वैसे ही नायिका के मुख-रूपी मेघ पर बिजलीरूपी हँसी का नाम तक नहीं है। वह दिन-रात आँसू बहाती है। सावन-भादों की-सी झड़ लग गई है। बेचारी सुकुमार नायिका का कोमल हृदय विरह के ताप से पिघल गया है, और नेत्रों के द्वार से बाहर की ओर बह चला है।

इस हृदय की हम क्या कहें। इस पर हमें बड़ी दया आती है—इसको घड़ी-भर भी चैन नहीं है। कभी विरह-वेदना से पिघल कर बहने लगता है; कभी प्रेम-प्रकाश की प्रखर किरणों के प्रभाव से पिघलकर प्रेमाश्रुरूप में प्रकट होता है; कभी दया, करुणा आदि अन्यान्य भावों से आर्द्र होने पर भी पिघल पड़ता है। पता नहीं, यह हृदय कितना बड़ा है कि इसका अभी तक अंत ही नहीं आया। बहुत-से झरने सूख

गए, बहुत-सी नदियों तक का नाम न रहा; परंतु इस झरने में तो पति-प्रेम का प्रवाह अभी उमड़ ही रहा है। यह झरना तो मरने पर ही झरना बंद करेगा, वरना यों ही झरता रहेगा।

विरह-वेदना

मिलन होइ है स्वप्न में, बिछुरत निकसे बैन ;
पै दुखियाँ अँखियाँ कबहुँ, वा बिन पलहु लगै न ।

नायक विदेश को जा रहा है । बिछुड़ते हुए बड़ा दुखी हो रहा है । इस प्रकार उसकी दयनीय दशा को देखकर नायिका यह कहकर उसे धैर्य दिलाती है कि घबराने की कोई बात नहीं है, क्योंकि स्वप्न में अवश्य मिलन होगा । नायक उस समय तो यह सुनकर किसी प्रकार अपने मन को समझाकर रख लेता है ।

किंतु पाठको ! ज़रा कलेजा थामकर सुनिएगा । बाद में बेचारे नायक की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई है । मिलना तो दूर किनार रहा, ग़रीब को नींद तक नहीं आ रही है । प्यारी का मुखचंद्र देखे विना अँखियाँ पहले ही चकोर की तरह अकुला रही थीं, तिस पर नींद का न आना और नई मुसीबत है । दुखियाँ अँखियाँ पल-भर के लिये भी नहीं लगती हैं । संभव है कि किसी शुभ मुहूर्त में पल-भर के लिये भी लग जायँ, तो प्रिया के दर्शन हो जायँ । प्यारी के विना नींद हराम हो रही है । नींद आवे जब न स्वप्न आवे; वहाँ

तो प्यारी के साथ-साथ बेचारे को नींद के साथ भी वियोग हो गया है। न प्यारी मिले, न नींद आवे और न स्वप्न आने की आशा की जाय। सच बात है, मुसीबत में कौन किसका साथ देता है—

कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक;
मरते दम देखा है कि आँख भी फिर जाती है।

बेचारे ने स्वप्न के मिलन पर भी संतोष कर लिया। परंतु उसके भाग्य में तो यह भी नहीं लिखा है। दिल के आईने में दर्शन करता, किंतु वह नायिका के पास रह गया। ग़रीब रात-दिन बिस्तरे पर पड़ा करवटें बदला करता है। बड़ी मुसीबत में है। सच तो यह है कि—

जुदा किसी से किसी का कभी हबीब न हो;
यह दर्द वह है कि दुश्मन को भी नसीब न हो।

ग़जब का गुप्तचर

गुप्तचरी है करत शशि, पा अनंग निर्देस ;
प्यारी को पहरो सदा, देत बदल कै भेस ।

चाँद कभी छोटा दिखलाई देता है, और कभी बड़ा, सो कोई यह न समझे कि यह घटता-बढ़ता है। क़िस्सा यह है कि नायिका पर विशेषकर कामदेवजी महाराज आसक्त हैं। जैसा कि उपपतियों का स्वभाव होता है, आपको सदा इस बात का संदेह रहता है कि प्रेमिका गुप्तरूप से कहीं किसी दूसरे यार से न मिल ले। अतः आपने चंद्रमा के नाम हुक्म निकाल दिया है कि वह बिला नाग़ा हर रोज़ भेष बदलकर उनकी माशूक़ा साहबा की निगरानी रक्खे कि वह किसी और यार से बातचीत न करे। कामदेव के जासूसों ने तो जर्मन-जासूसों को भी मात कर दिया। यह तो हमें मालूम था कि चंद्र कामदेव के मददगारों में से है। मगर यह तो हमें अब मालूम हुआ कि चंद्र कामदेव की ख़ुफ़िया पुलिस में मुलाज़िम है, और जासूसी किया करता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कामदेव की माशूक़ा ख़ूबसूरती में उनकी स्त्री रति से भी बढ़ी-चढ़ी है। तभी न यहाँ तक नौबत पहुँची है कि चंद्र-ऐसों को जासूसी के लिये तैनात किया गया है।

सुर-सरिता

पौन साँस ठंढी चले, बरसे नैननि नीर ;
छलछलाय कुच गिरि गिरें, गिरें अंक भू धीर।

वर्षाऋतु का पूरा-पूरा सामान जुटा है। विरह के बादलों ने नायिका के धैर्यरूपी आकाश को आच्छादित कर लिया है। नायिका ठंढे निःश्वास भर रही है। वही मानो पुरवाही पवन के ठंढे झोंके हैं। यह लो मूसलाधार वर्षा होने लगी, रिमझिम-रिमझिम बूँदे पड़ने लगीं, झरझर आँसुओं की झड़ी लग गई। यह पानी की घनी और तेज़ बौछार प्राणियों को सुख न देकर, उल्टा उन्हें दुःख ही देने लगी। छलछल करती हुई जलधार कुचरूपी पर्वतों पर पड़ने लगी। फिर गोद-रूपी भूमि पर गिरकर समुद्र की ओर प्रवाहित होने लगी। साथ ही उसके अंक से धैर्य भी धुल गया और छूटकर पृथ्वी पर जा रहा। जैसे पहाड़ पर गिरकर पानी अपने साथ पत्थर इत्यादि को उखाड़कर बहा ले जाता है, वैसे ही अश्रुधार नायिका के हृदय पर गिरकर वहाँ से उसके धैर्य को बहा ले चली। पत्थर इत्यादि तो जमे होते हैं, परंतु उसका धैर्य तो पहले से ही उखड़ा हुआ था, फिर उसके आँसुओं के प्रबल प्रवाह के साथ

बहते क्या देर थी। यह नदी स्त्री के शरीररूपी भूमि को उपजाऊ बनाकर उसका ह्रास करने लगी।

हम नायिका की इस अश्रुधारा को सुरसरि की उपमा दे सकते हैं; क्योंकि यह भी गंगा की तरह त्रिपथगा है। विरह-रूपी भगीरथ के तप के प्रभाव से, नैनरूपी विष्णु के चरणों को छोड़कर, कुचरूपी शिवजी के मस्तक पर गिरकर, अंक-रूपी पहाड़ पर गिरी, और वहाँ से भूमि पर पतित होकर सागर की ओर प्रवाहित होने लगी। सच है—"विवेकभ्रष्टानांतुभवति विनिपातो शतमुख:।"

बहुरूपिया विधु

बहूरूपियो बनत है, घटत-बढ़त नहिं चंद ;
देख वियोगिनि कहँ दुखी, देत रहत आनंद ।

लोगों का यह ख़याल कि चंद्र घटता-बढ़ता है, बिलकुल ग़लत है। वास्तव में बात यह है कि चंद्र परोपकार-वश वियोगिनियों के दुःख से दुःखित होकर उनका मनोविनोद करने के लिये बहुरूपिया बनता है। बहुत मुमकिन है कि यही बात हो, क्योंकि चंद्र के परोपकारी जीव होने में तो कोई शक नहीं है। चाँदनी रातें हमको इसी की बदौलत नसीब होती हैं। अब वियोगिनियों के भाग्य खुल गए समझ लो। चंद्र-सा निष्काम सेवक भला इनको मिल गया, अब क्या चाहिए। इसके नित नए-नए रूप देखें और आनंद से रहें।

मगर एक बड़ा ज़ुल्म हो गया। बेचारे बहुरूपियों की रोज़ी छिन गई। उनको चाहिए कि अब कोई और पेशा अख़्तियार करें। भला जब चंद्र-से चतुर जन इस काम को करने लगे, तो अब अन्य लोग इस कार्य को मुक़ाबले में सफलता-पूर्वक कर सकेंगे, यह आशा कैसे की जाय।

आँखमिचौनी का आनंद

बदरन में प्रकटत दुरत, करत केलि आनंद ;
आँखमिचौनी मनु रमत, तारन के सँग चंद ।

कभी बादलों में छिप जाता है, कभी प्रकट हो जाता है। इस प्रकार चंद्र आनंदपूर्वक ताराओं के साथ आँखमिचौनी खेल रहा है। पाठकों में से जो इस खेल को खेल चुके हैं, वे जानते हैं कि इस खेल में क्या आनंद है। आकाश में कहीं-कहीं बादलों के टुकड़े दीख पड़ते हैं, सो उनकी ओट में कभी तो चंद्र हो जाता है और कभी तारे हो जाते हैं। मनोविनोद की आवश्यकता सबकी प्रतीत होती है। विनोदप्रिय होने के कारण ही तो हम देखते हैं कि चंद्रमा इतनी आयु का हो जाने पर भी अभी बिलकुल जवान दीख पड़ता है। यह सब खेल-कूद ही की बदौलत है।

प्रेम-प्रतीक्षा

आशा आलोकित कबहुँ, कबहूँ चिंता चूर ;
द्वार ओर इक चंद्रमुखि, देखि रहीं मदपूर ।

सावन की काली डरावनी साँपिन-सी रात है। रह-रहकर बादलों में बिजली चमक जाती है। ऐसे समय एक कामातुर कामिनी, जिसका मुखड़ा उस अँधेरे में चंद्रमा के समान चमक रहा है, उचक-उचककर बार-बार द्वार की ओर देख रही है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसे अपने प्यारे की प्रतीक्षा है। उसके चेहरे पर कभी चिंता का चित्र खिंच जाता है, तो कभी नैराश्य के निशान नजर आते हैं। कभी मुख-मंडल पर आशा का अक्स पड़ने लगता है, तो कभी वह आनंद से आलोकित हो उठता है। क़ाबिलदीद नज़ारा है, एक अनिर्वचनीय उपाख्यान है। बड़ा ही भावपूर्ण और सुंदर चित्र है। आशा और चिंता का बड़ा ही मनमोहक मिश्रण है। परंतु इन भावों को अच्छी तरह वे ही समझ सकते हैं, जो पहले कई दफ़े ऐसे चित्र देख चुके हैं; जो हिज्र की रात का मजा लूट चुके हैं। इंतजार में भी एक अनूठा आनंद है—

किस-किस तरह की दिल में गुज़रती है हसरतें ;
है वस्ल से भी ज्यादा मज़ा इंतज़ार में ।

प्रेम-पत्र

पत्र लिखन बैठी प्रिया, पीतम सुधि ह्वै लीन ;
ह्वै बौरी लिखि के प्रिये, कोरी पाती दीन ।

चित्र सुंदर है, भाव उत्कृष्ट है। कविजी के इस भावमय चित्र को आँखों के सामने रख, अनिमेष हो, सौंदर्य-रस का पान कीजिए। भाव सीधा-सादा है, परंतु इसकी गूढ़ता को देखने से यह प्रतीत होता है, मानो स्वाभाविकता इससे टपक रही है। पति को परदेश गए बहुत समय हो गया है। नायिका उनको पत्र लिखने के विचार से काग़ज़-क़लम लेकर बैठी-बैठी सोचती है कि क्या समाचार लिखूँ। इधर दिमाग़ में एक के बाद एक भाव इस शीघ्रता से आ रहे हैं, मानो उनकी बौछार लगी है। उधर जब प्रेम की तराज़ू में रखकर प्रत्येक भाव को तौला जाता है, तो कम उतरता है। घंटों इस प्रकार बीत गए। इसी तरह भाव आते गए और ना क़ाबिल कह-कहकर छोड़ दिए गए। पत्र कोरा-का-कोरा रक्खा है। हाथ में जो लिखने के लिये क़लम ले रक्खी थी, समय ज्यादा हो जाने से उसकी भी स्याही सूख गई। आख़िर विचार किया कि अभी तक कुछ नहीं लिखा। परंतु लिखती तो भी क्या ? भाव तो कोई

मन में जँचा ही नहीं था। अंत में वही 'ढाई अक्षर प्रेम के' लिख दिए जो पति-प्रेम की प्रेरणा से उसके मस्तिष्क के अग्र भाग में थे। 'प्रिये' लिखकर सोचने लगी कि पत्र में क्या लिखूँ। सोचते-सोचते मानसिक चक्षु के आगे प्रियतम की हूबहू तस्वीर, हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेम-मुसकान और बातचीत करते हुए रूप में खिंच जाती है। नायिका 'चित्रार्पितारंभ' की तरह निश्चल हो, इस छवि को निरखने लगती है और नायक के रूप में अपने रूप का प्रतिबिंब देखकर आप ही अपनी छवि पर विमुग्ध हो जाती है। यही कारण है कि सात्विक-भाव-विभ्रम वश स्त्रीलिंग में 'प्रिये' संबोधन करती है। इस धुन में लगी हुई पति, की सुधि में लीन उसको देख, सबको यही ख़याल होता है कि वह दीवानी हो गई है। वास्तव में उसकी इस दशा में और पागलपन में कोई विशेष अंतर नहीं है। आत्मविस्मृति में लीन नायिका पत्र को समेटकर, बड़ी ख़ुशी के साथ नायक के पास भिजवा देती है। उसको यह सूझता ही नहीं कि उसकी पत्री कोरी है। वह तो राज़ी हो रही है कि मैंने ख़ूब अच्छे भाव भरकर पत्री लिखी है।

परंतु पाठक, क्या सचमुच उसने कोरी पाती दी है? नहीं-नहीं, हमारा तो ख़याल है कि आज तक शायद ही किसी

और ने ऐसी भावपूर्ण पाती लिखी हो। हमें तो यह भी निश्चय है कि जितना भाव 'प्रिये' शब्द में भरा था, उसको दरसाने—नहीं-नहीं, उसका आभास तक दिलाने—में चुनी हुई बड़े-बड़े प्रेम-प्रवीण पंडितों की पूरी बेंच तक कामयाब नहीं होगी। प्रत्युत 'प्रिये' शब्द के आगे उनकी सारमयी भावपूर्ण पत्री पानी भरा करेगी।

मार की मार

फूलन के गहि धनुष-सर, भौंरन जिहि पर तान ;
अतनु मार मारत सबै, तजत मान गुन कान।

अन्यान्य ऋतुओं में तो रतिनाथ को बड़ी मुश्किल से कहीं धनुष-शर बनाने की सामग्री मिलती होगी, परंतु ऋतुराज वसंत उनके लिये अनेकानेक सुंदर सुगंधित सुमनों का उपहार लाते हैं। इसीलिये वे आपके अंतरंग मित्र हैं। केवल कोमल कुसुमों की क़तार ही न लाकर वे अपने साथ नव पल्लव, नव मंजरी, निर्मल नीर, नीले, लाल और धवल कमल, नव कौमुदी, नए पक्षी, नए मदमाते भ्रमर, नवजीवन और नवानंद के नवरत्न भी लाते हैं। इस मधु-मास में मदमस्त, मैनमहीप अपने माननीय मित्र की मदद से मधुपों की प्रत्यंचा, मालती इत्यादि मीठी महकवाले पुष्पों की कमान, मधुमकरंदमय मुदित मंजरी के बाण लेकर मन में मुदित होकर मधुयामिनी में मरणासन्न विरहिनियों तथा मानिनी, मध्या, मुग्धारूपी मृगियों को मारने के लिये तान-तानकर बाणों की मृदु मार मारता है। महादेवजी की मेहरबानी से आपको और भी मदद मिली

है। अतनु होने के कारण आप किसी के दृष्टिगोचर तक नहीं होते, परंतु धनुष-बाण पहले से कहीं ज्यादा अच्छा पकड़ सकते हैं। बेचारे बेसमझ मृगों को अपने साज व सामान की शान दिखाकर मोहित कर लेते हैं; परंतु वे मृग मार की मार से अपने प्राणों को न छोड़कर मान, लज्जा और कुल कान ही को छोड़ देते हैं।

देखो, एक चीज़ न छोड़ने के कारण तीन-तीन चीज़ें छोड़नी पड़ती हैं। बड़ा आश्चर्यजनक व्यवहार है। शिकारी के शरीर तक नहीं, धनुष और बाण भी कोमल कुसुमों के हैं, प्रत्यंचा बनाई है, चंचल चंचरीकों को चुनकर और शिकार के प्राण छूटने के बजाय मान, गुन और कान ही छूटते हैं।

मार्तंड का मोह

सजनी को रवि ने कभू, देखी वसनविहीन ;
याही ते है तपत नित, अधिक-अधिक मतिहीन।

कहते हैं कि किसी समय पर सूर्य ने नायिका-विशेष को नग्न देख लिया। उसके सौंदर्य को देखकर आप उस पर फ़िदा हो गए, और लगे पागल बनकर अधिक-अधिक तपने कि कहीं गर्मी के कारण नायिका अपने वस्त्र फिर उतार दे, तो ग़रीब को उसके नग्न गात की झलक देखने को एक बार फिर मिल जाय। यह नायिका तो मालूम होती है सुंदरता की साक्षात् प्रतिमा है, अन्यथा सूरज, जिसकी नज़र के सामने सैकड़ों गुल रहते हैं, उसे देखकर ऐसा कभी नहीं बौरा जाता।

सौंदर्य में भी एक अजीब शक्ति है। इसे देखने को किसका मन नहीं ललचाता। सूर्य के सदृश उच्च आत्माएँ भी इसके फेर में पड़कर अपने कर्तव्य से च्युत होने लगती हैं। सूर्य यह नहीं समझते कि इस अधिक तपने से उन्हें प्यारी के गात-दर्शन तो संभव हैं कि हो जायँगे, किंतु अधिक गर्मी के कारण औरों को व्यर्थ कितना कष्ट उठाना पड़ेगा। मगर इसकी कौन परवा करता है ? सूरज अपना दिल खो चुके। वे

तो बेचारे दीन, मतिहीन हो गए। समझ ही होती तो बेचारे ऐसा काम ही क्यों करते। किंत अब तो नायिका के हाथ लज्जा है। स्त्रियों के स्वभाव में हठ बहुत होती है। कहीं वह अकड़कर बैठ गई कि चाहे प्राण निकल जायँ, किंतु वस्त्र तो हर्गिज़ न उतारूँगी, तो समझ लो प्रलयकाल आ उपस्थित हुआ। क्योंकि सूरज देव भला किससे कम हैं। वे अधिक-अधिक तपते ही चले जायँगे। परमात्मा सूरज और नायिका में से किसी एक को सुमति दे।

पाठक ! आप समझे कि ये सूरजजी महाराज नायिका का गात ही देखने को इतना उत्सुक क्यों हैं। नायिका का मुख देखकर ही वे संतुष्ट क्यों नहीं हो जाते। वास्तव में बात यह है कि नायिका का मुख तो उन्हें चंद्रमा के सदृश दीख पड़ता है। अतः वे पहचान नहीं पाते हैं। जब नायिका को बिलकुल नग्न देखते हैं, तब पहचानते हैं कि यह वही नायिका है।

दामिनी-दमक

घटा घोर दामिनि दमक, चातक केकि पुकार ;
राधा माधव मुरलिका, झुलें चंप की डार ।

वर्षाकाल का यह अत्यंत रोचक दृश्य दर्शनीय है। आकाश घनघोर घटाटोप से घिरा हुआ है । रह-रहकर चपल विद्युत् बादलों में इस प्रकार चमक जाती है, मानो कोई चंचल युवती अपने प्रेमी का मन लुभाने के लिये पल-पल में प्रकट होकर छिप जाती है । अपने आश्रयदाता मेघों को रसपूर्ण देख आश्रित पपीहे और मयूर पुकार-पुकारकर अभ्यर्थना कर रहे हैं। इसी सुखदायी समय में सघन कुंज के एकांत स्थान में एक चंपा के वृक्ष के नीचे राधा-माधव मुरली लिए झूल रहे हैं। पाठक, वह कौन पाषाण-हृदय है, जो मधुर मुरलीधारी श्यामविहारी की राधा के साथ इस झूले की झाँकी के दर्शन कर प्रेमरसार्द्र नहीं हो जायगा ? क्या राधाकृष्ण के इस समय के आनंद का आप अनुमान भी लगा सकते हैं ? क्या राधिकाजी के समान आज और कोई धन्य है ?

परंतु आगे चलकर निरीक्षण के बाद यह प्रश्न उठेगा कि इस अवसर पर इन्होंने अपने साथ यह मुरली भारस्वरूप क्यों

ले रक्खी है। हमने तो सुना है कि नायक-नायिका के संयोग के शुभावसर पर तो गलमाल-जैसी सुंदर और प्रिय वस्तु भी त्याग दी जाती है, क्योंकि यह उनके मिलने में बाधा उत्पन्न करती है, और कुछ नहीं तो रंग में भंग तो अवश्य कर देती है। "हारो नारोपितो कंठे मया विश्लेषभीरुणा" यह तो सब जानते ही हैं। तो फिर उसी प्रकार बाधास्वरूप यह मुरलिका क्यों साथ ली है। क्या उनके प्रेम को उस समय इतना अवसर प्राप्त था कि परस्पर के आनंद को छोड़ एक और चीज़ की ओर ध्यान बँटाते, और उसकी रक्षा की चिंता में रहते। और फिर भूलने के समय तो एक हाथ में मुरली रखना और केवल एक ही हाथ से और काम लेना तो बड़ा कष्टदायक होगा। न-जाने कब भूले से छूट पड़ें। परंतु यह सब होने पर भी मुरली का साथ रहना किसी और गूढ़ कारण का द्योतक है। क्या आपका यह ख़याल है कि जिस मुरली ने कितनी ही बार बिछुड़े हुए विरह-व्यथित इस दंपती को अपनी मधुर ध्वनि द्वारा मिलाया है, उसका अब उनके सुख के सुअवसर पर परित्याग कर दिया जाय? क्या वही मुरली जिसकी सुखद तान ने व्रजांगनाओं को मुग्ध कर कृष्ण के प्रेम में सराबोर किया था, उनके इस संपत्तिकाल में छोड़ दी जाय? क्या जिस मुरली ने बहुत-से रास रचाए और कृष्ण का

राधिकाजी के सहित प्रेम-रस-पान कराया, वही चिरसंगिनी अब एक बटोही की तरह विस्मृत कर दी जाय ? नहीं-नहीं, ऐसा समझना बड़ी भूल है। कृष्ण-राधिका ऐसे कृतघ्न नहीं हैं। उनसे ऐसा हो नहीं सकता। तभी तो उन्होंने इस निर्जीव वस्तु को भी प्रेम-सहित अपने आनंदोत्सव में सम्मिलित किया है। सचमुच, वनमाली गोपाल बड़े ही कृपालु हैं। हमें तो यह इच्छा होती है कि हम भी कहीं उनके झूले की बैठक को निर्जीव लकड़ी बनकर उनके उस समय के सुखस्पर्श का सुख अनुभव करते।

अटा पर अप्सरा

चढ़िकै नार अटार, निरखि रही घन की छटा ;
गावत राग मलार, पायल की भनकार सन ।

सावन-भादों की काली घटाएँ नभ में घिरी हुई हैं, जो बड़ी सुंदर प्रतीत हो रहीं हैं। एक सुंदरी अटारी पर बैठी हुई उनकी छटा निरख रही है। सुमधुर स्वरों से मल्लार राग गा रही है। पैरों की पायल बजाकर उसकी झंकार से ताल का काम ले रही है। वास्तव में बड़ा सुंदर दृश्य है। वर्षा-ऋतु की श्याम घटाएँ सचमुच निराली ही छटा दिखला रही हैं और उस समय मल्लार राग सोने में सुगंध का काम दे रहा है। और उस पर ख़ूबी यह है कि नायिका के कल-कंठ से उसका गाया जाना और उसी के पैरों की पायलकी झंकार की ताल का दिया जाना! वाह-वाह, क्या कहें बड़ा उमदा रंग जमा है, और यह सामान कहाँ जुटा है? अटारी पर। तभी तो दुगुना मज़ा आ रहा है। घन की छटा, ऊँची अटा, दर-असल लुत्फ़ है चटपटा।

बादलों की बदाबदी

उत उमरी कारी घटा, इत उमरे मम नैन ;
बदाबदी बरसन लगे, सावन में दुख दैन।

बदाबदी का आर्थिक संसार में ख़ूब धौंसा बजता है। जहाँ देखो तहाँ चढ़ा-ऊपरी है। यहाँ तक कि बेचारे छोटे-छोटे व्यापारियों और जन-साधारण को पीसने में इस राक्षसी प्रथा ने आजकल की बिजली की चक्कियों से भी ज्यादा काम किया है। फलस्वरूप जिधर देखो, हाहाकार मच रहा है। मामला इतना बढ़ गया है कि अगर किसी सौदागर का सिक्का बाज़ार में जम गया है, उसके माल की लोग क़दर करने लगे हैं, और वह प्रचुर परिमाण में माल पैदाकर बेचने लगा है, तो उसकी यह बढ़ती औरों से देखी न जायगी। वे उससे और अच्छा, चटकीला, भड़कीला, सस्ता और उससे भी ज्यादा परिमाण में, माल पैदा करेंगे और बेचेंगे। यहाँ तक कि कोशिश ऐसी करेंगे कि किसी पहलू से उसकी शाख नष्ट कर देंगे और अपनी धाक जमा लेंगे। परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की चढ़ा-ऊपरी से और विना ख़ास माँग के प्रचुर परिमाण में माल बनाने से पूरक-शक्ति ज्यादा हो जाती है, और माँग

घट जाती है। फल यह भी होता है कि बाज़ार में हलचल, द्वेष-भाव और एक दूसरे के प्रति वैमनस्य फैलता है। फिर इस प्रकार की कार्यवाही तो 'मार्केट टाइम' बाज़ार के दिनों में भीषण रूप धारण कर लेती है।

हूबहू यही हाल है हमारी नायिका के विषय में। सावन का महीना है। नायिका पति के विरह से अत्यंत व्याकुल है। इसी अवसर को उपयुक्त समय जान, बेदर्द बादलों का समूह नायिका का जी जलाने के लिये घिर आता है, और लगता है गाज-बाज और चमक-झमक के साथ बरसने। इधर इस समय में प्रिय की सुधि कर दग्धहृदया नायिका के भी नेत्र अश्रु-मोचन करने लगते हैं। ज्यों-ज्यों बादल रंग जमाकर ज्यादा-ज्यादा मेह बरसाते हैं, त्यों-त्यों नेत्र भी प्रतिद्वंद्वी बनकर बादलों के साथ बरसने में होड़ा-होड़ी करते हैं। फल यह होता है कि इन हुड़दंगों के झगड़े में बेचारे ग़रीब मारे जाते हैं। लड़ते हैं दो मदमस्त मतंग, पर पिस जाते हैं बेचारे कोमल पादप। इनका 'कंपिटीशन' इतना भीषण रूप धारण कर लेता है कि उधर तो बेचारे दीन-हीन जन-समूह की, तो इधर बेचारी विरहिनी नायिका की शामत आ जाती है। परंतु ये दोनों किसकी सुनें, ये तो अपनी-अपनी धुन में सवार हैं। इन बादलों की मूर्खता को तो देखो, ये गँवार यह नहीं समझते कि भला

हम कब तक यह हठ निभा सकेंगे। आख़िर हारना ही पड़ेगा। क्योंकि जहाँ नायिका के नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का अखंड भंडार भरा है, वहाँ बादलों में परिमित परिमाण में ही जल है, जो ख़तम हो जाने पर उनको अपना-सा मुँह लेकर रह जाना होगा। अतः उचित है कि इनको कोई यह सुझावे कि ये वृथा लोगों को दुःख देने से बाज़ आ जायँ। नहीं तो इस देवासुर-संग्राम में बेचारे संसाररूपी सागर के शक्तिहीन सत्वों की शामत है।

सखी का स्नेह

निसि कारी घनघोर नभ, गतिबाधक सब साज ;
विद्युत सखि पै तीय कहँ, मार्ग दिखावन काज ।

रात्रि का समय है। आकाश में घनघोर घटाओं का घटाटोप है। अंधकार इतना घना है कि हाथ-को-हाथ दीखना मुश्किल है। मार्ग भी अपरिचित है। इस भयंकर समय में अपने प्यारे के प्रेम में पगी हुई एक नायिका घर से बाहर निकली। एक तो स्त्री स्वभाव से ही भीरु और कोमल चित्त-वाली होती है, तिस पर प्रकृति का यह भयंकर रूप ! यह तो बड़े-बड़े साहसी, धीर और वीर पुरुषों तक के हृदय को हिला देनेवाला है।

परंतु पाठकगण ! यह न समझिए कि नायिका इस दृश्य को देखकर डर गई है, और हताश हो पीछे लौटने का विचार कर रही है। वह तो अपने प्यारे से मिलने को अत्यंत उत्सुक हो रही है। उसका हार्दिक प्रेम इतना प्रबल है कि जिसके आगे यह सब भयोत्पादक साज कुछ चीज़ नहीं है। मार्ग अपरिचित है और घोर गर्जन करते हुए बादल भी न-जाने कब मूसलाधार बरसने लगें ; रास्ता भी एक सघन जंगल में

से है। जिधर देखो, उधर बेचारी नायिका के प्रिय-मिलन में विघ्न डालनेवाला साज जुटा है। अगर और कोई समय होता, तो कई सखियाँ भी राह दिखाने को साथ हो जातीं, परंतु आज तो इन्होंने भी धोखा दिया। नायिका अकेली है। हृदय में प्यारे का उत्कट प्रेम रेशम की कोमल रस्सियों से, अलक्ष्य रीति से, उसको अपनी ओर खींच रहा है। वह चल पड़ी, उत्साह उसको आगे बढ़ाए चला। परंतु उस काली अँधियारी रैन में राह कैसे मिले? उसकी दशा अत्यंत दयनीय है। प्रकृति के किसी भी अंश ने उस दुखिया पर दया न की, प्रत्युत् हरएक ने जी-भर उसकी राह में अड़चनें पैदा कीं। परंतु—"जाको राखे साइयाँ मार न सकि है कोय।" स्त्री की दुःख-पूर्ण दशा को देखकर किसका कठोर हृदय नहीं पसीजता? आख़िर विद्युत् के हृदय में दया-भाव का संचार हुआ। उसने चंचलता, द्युति और आभा इत्यादि गुणों से उसे अपनी प्रिय सखी जाना, और सख्योचित व्यवहार भी किया। समय-समय पर चमककर नायिका की राह पर प्रकाश डाला, जिससे थोड़े ही समय में वह संकेतस्थल पर अपने प्रियतम से जा मिली।

धन्य है विद्युत्! तूने एक सच्ची सखी का कार्य किया कि इस विपत्ति में अपनी सखी की सहायता की।

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी; आपति काल परखिए चारी।

झूले की झमक

सावँन में झूलो परो, सखि सँग तिय झुलराय ;
आय बीच प्रकटे पिया, 'मरी' कहत लपटाय ।

वर्षा-ऋतु भी क्या ही आनंदकारी है। इसमें तो वृक्ष-विटपों के साथ-ही-साथ मनुष्यों के थके-माँदे मन भी मोद से भरने लगते हैं। उनमें नूतन इच्छारूपी कोमल पत्ते निकलने लगते हैं। प्रेमरूपी पुष्प प्रस्फुटित होने लगते हैं, जिनसे ऐसी हृदयहारी सुमधुर सुगंध निकलती है कि सूँघनेवाले का मन प्रेम में मस्त हो जाता है। सारी वनस्थली सुंदर नायिका की नाईं हरी साड़ी पहने अत्यंत रम्य प्रतीत होती है, और उसके शरीर से वह मनोहारी गंध निकलती है, जो प्राणियों के जी में नवजीवन का संचार करती है। जगह-जगह निर्मल जल से भरे जलाशय और उनमें फूले हुए कमल और कुमुद अत्यंत रोचक मालूम पड़ते हैं।

इसी अवसर पर प्रेमी-प्रेमिकाओं में अनेक प्रकार की केलि-क्रीड़ाएँ हुआ करती हैं। कहीं जल-क्रीड़ा, तो कहीं वनविहार, कहीं रास-रचना, तो कहीं और-और रंग-राग। ग़र्ज़ यह है कि कोई-न-कोई प्रेम-लीला होती ही रहती है।

वर्षाकाल में सावन का महीना है। नायिका ने सघन वन में एक वृक्ष के नीचे झूला डाल दिया है और सखियों के संग बारी-बारी झूल रही है। इनको नायकजी का तो ख़याल है ही नहीं। बेचारे वे भी प्रेमी हैं। झूला झूलने में उनको भी आनंद आता है। परंतु वे इस आनंद से वंचित रक्खे गए हैं। प्रेमियों को अपना प्रेम प्रकट करने से कौन रोक सकता है। आख़िर वे भी लीलास्थल पर आ पहुँचे, और वहाँ एक कुज की ओट में छिप रहे, और चुपचाप बैठे सखियों की प्रेम-भरी निःशंक बातें सुन-सुनकर मन-ही-मन मुदित होने लगे। आप तो सबको देख रहे हैं, पर स्वयं किसी को दिखाई नहीं देते। देखते-देखते उनके मन में उस रंग-राग में सम्मिलित होने की उत्सुकता बढ़ने लगी। वे मौक़ा देखकर प्रकट होने का विचार करने लगे। इसी समय नायिका ने झूले पर पदार्पण किया और झूलने लगी। सखियों ने बात-ही-बात में दो एक झूले ऐसे ज़ोर से लगाए कि स्वभाव-भीरु, कोमल-हृदया नायिका के होश उड़ने लगे। वह भय से बोल उठी 'मरी'। परंतु हँसोड़ सखियों को तो इस 'मरी' में और मज़ा आता था, और उस बेचारी के होश उड़ रहे थे। उसका वह करुण स्वर कौन सुने? ऐसे मौक़ों पर तो ईश्वर ही सहायक होते हैं। अच्छा मौक़ा देखकर नायकजी अपने स्थान से लपके और नायिका

को बचाने के बहाने बीच ही में उसको पकड़कर अंक से लगा अपनी इच्छा पूर्ण की। इनको देखकर नायिका सहम गई। वह शर्म से सिमिट गई, पर करे क्या ? उसी ने तो बार-बार 'मरी-मरी' कहकर बचाने का निर्देश किया था। नायकजी ने कोई बुरा काम नहीं किया, जो उसको बचा लिया। हाँ, इतनी उनकी अक़्लमंदी थी कि नायिका का भी भय निवारण किया और अपने मन की अभिलाषा को भी पूर्ण किया।

प्रेम-प्रस्वेद

आई है री सरदऋतु, सखी पाकरस सेव ;
पिय के हियरे लगत ही, प्रकटत प्रेम पसेव ।

प्रायः शरद्-ऋतु में नायिकाएँ पाक-रस का सेवन किया करती हैं। यह इसीलिये कि पाक-रस सात्विक और पुष्ट पदार्थों के सम्मिश्रण से बनाए जाने के कारण बलदायक और गुणकारी होता है, और शरद्-ऋतु की कड़ी शीत को मिटाकर शरीर में गर्मी का संचार करता है। हमारी नायिका को भी उनकी प्रिय सखी ने शरद्-ऋतु में पाकरस सेवन करने की सलाह दी। भला सखी होकर ऐसी सलाह न देती, तो और कौन ऐसी सम्मति देता। उस हिताभिलाषिणी सखी ने तो उसके सुख के लिये यह राय दी थी। परंतु क्या आप ख़याल कर सकते हैं कि इसका उत्तर नायिका ने क्या दिया होगा? क्या उसने सखी को अपने हितचिंतन के लिये धन्यवाद दिया और उसकी सलाह मानकर पाक बनाने का विचार किया? नहीं-नहीं, उसको तो यह सलाह उलटी हानिकारक जँची। उसने यह सोचा कि अगर पाक-सेवन किया जायगा, तो यह निश्चय है कि उसकी पुष्टता के कारण शरीर से, शरद्-ऋतु के होते हुए

भी प्रस्वेद बहने लगेगा। मतलब यह है कि उसने जान लिया कि सखी की सलाह का सारांश यही है कि पाक-सेवन से शरीर में उष्णता आ जायगी, और शीत मिट जायगी। परंतु इस बाज़ार से लाए जानेवाले सौदे की तरह पाक-रस के द्वारा लाई जानेवाली उष्णता का तो उसको ख़याल तक नहीं था, क्योंकि उष्णता तो उसके घर की ही चीज़ थी। जब चाहती, तब प्रिय से अंक-भर मिलती, और इस प्रेम-मिलन से हृदय में जो उष्णता आ जाती, वह सौ शीतकाल की सर्दी मिटाने को पर्याप्त थी। यही नहीं, यह उष्णता तो इतनी प्रबल होती कि शीतकाल में भी सात्विक प्रस्वेद उसके बदन से प्रवाहित हो चलता। गर्मी प्राप्त करने का जब यह स्वाभाविक ही तरीक़ा उसके पास मौजूद था, तो भला वह कृत्रिम-रीति से, पाक-सेवन से, उष्णता लाने की इच्छा ही क्यों करती। अतः उसने सखी

इस प्रस्ताव का प्रेमपूर्वक खंडन कया और इसका कारण भी उसे सुझा दिया। नायिका ने ख़ूब दूरदर्शिता का काम किया, नहीं तो अगर विना सोचे-समझे सखी की सलाह स्वीकार कर लेती, तो फलस्वरूप जो प्रिय के प्रेमालिंगन से प्रकटते हुए प्रेम-प्रस्वेद के साथ-ही-साथ जो पाक-रस-प्रभूत प्रस्वेद प्रादुर्भूत होता, तो दोनों प्रस्वेद-धाराओं के मिले हुए इस प्रवाह में न-जाने कितने प्रेमी प्रवाहित हो जाते।

बादल में बिजली

कारी सारी पहिनकै, रमत स्याम सन फाग ;
बिजुरी जिमि घन में चमकि, दमकि झमकि गइ भाग ।

शीतकाल और वसंत की वयःसंधी का समय है। न तो ज्यादा गर्मी और न सर्दी ही है। फागुन का महीना और होली के दिन। स्त्री-पुरुष मदमस्त होकर फाग खेलने में लगे हुए हैं। चारों ओर गुलाल के लाल-लाल बादल उड़-उड़कर लाल पानी की झड़ लगाए हुए हैं। बाहरी अंगों के साथ-साथ लोगों के भीतरी मन भी रँग गए हैं।

नवेली राधा ने भी अपने सौंदर्य को चमकाने के लिये अथवा श्याम के रंग में रंग मिलाने के लिये श्याम साड़ी पहनी है। वे साड़ी के काले रंग से कृष्ण के मन को लाल रँगना चाहती हैं। इसी वेश में वे हिम्मत करके गिरिधारी के साथ फाग खेलने निकली हैं। परंतु खेल आरंभ होते ही रँगीले रसिकराज ने जल-भरी पिचकारी चलाकर उसको अच्छी तरह से रंग में सराबोर कर दिया। भीगी श्याम साड़ी से पानी झरने लगा और अंग पर साड़ी के चिपक जाने से सुडौल अंग-प्रत्यंग दिखाई देने लगे। इसी

समय, वे अभी नवोढ़ा होने के कारण लज्जित होकर भाग गईं।

इस चंचल भगान का ही कवि ने वर्णन किया है। जलार्द्र होकर झरते हुए काले पटरूपी मेघ में बिजली की तरह चंचलता के साथ अपने अंग की चमक-दमक दिखाकर, लज्जित होकर और पायल, किंकिनी, नूपुर इत्यादि आभूषणों को झमकाती हुई, वे भाग गईं।

क्या आप समझते हैं, वे अकेली ही भाग गईं? नहीं-नहीं, यदि आप ऐसा समझते हैं, तो महज़ ग़लती पर हैं। बेचारी अबला ऐसी घन अँधियारी में अकेली होती, तो डर न जातीं। वे अपने साथ मनमोहन के मन को और लज्जा सखी को लेती गईं।

संसार का सार

करत सौंदर्योपासना, जीवन बीते मोर ;
निरखत सुंदर वस्तु सब, जैसे चंद चकोर।

जैसे चकोर को चंद्र प्यारा लगता है, चंद्र को देखते-देखते वह कभी नहीं अघाता, उसी प्रकार सकल सुंदर वस्तुओं का निरीक्षण करते हुए, सौंदर्योपासना में मेरा जीवन व्यतीत हो।

सौंदर्योपासना में क्या सार है, यह वे ही लोग जान सकते हैं, जो इस उपासना को कर चुके हैं। सौंदर्य ही इस सारी सृष्टि का शृंगार है। इस के विना यह संसार केवल एक भार है, जिसमें गुज़र होना दुश्वार है। यों तो सुंदर वस्तु सबको ही अच्छी लगती है, किंतु जो इसके क़दरदान हैं, उनको उसके देखने से कुछ निराला ही आनंद आता है। गुल सबको भाता है, किंतु बुलबुल को उसे देखकर कुछ और ही मज़ा आता है। चंद्रमा की ख़ूबी चकोर से पूछिए। मेघों की शोभा चातक बतला सकता है। फिर जो सौंदर्योपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? जिधर दृष्टि डालते हैं, उन्हें सौंदर्य-ही-सौंदर्य नज़र आता है। श्याम घन में उन्हें कृष्णचंद्र दिखलाई देते हैं।

कोयल की किलकार में उन्हें मनमोहन की मुरलिका की मधुर तान सुनाई पड़ती है। नायिका के मुखड़े में उनको निष्कलंक चंद्र के दर्शन होते हैं। मृग, खंजन और मीन को देखकर वे किसी नायिका के सुंदर नेत्रों के ध्यान में मग्न हो जाते हैं। प्रकृति-नटी नित उनकी आँखों के सामने नाचती रहती है। चिड़ियों के चहचहाने में वे प्रकृति-देवी के कल-कंठ से सुमधुर संगीत का रसास्वादन करते हैं।

सारांश, यह सारा संसार उन्हें सौंदर्यमय प्रतीत होता है। प्रत्येक वस्तु में उन्हें परब्रह्म परमात्मा के पवित्र दर्शन होते हैं। अंत में वे सौंदर्य के उस लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ केवल सच्चे सौंदर्योपासकों की ही गति है, और जहाँ की सुंदर झाँकी के दर्शन होते ही आत्मा उस महाकवि में लय हो जाती है, जिसने इस संसाररूपी महाकाव्य की रचना की है।

सौंदर्य की शक्ति

है प्रभाव सौंदर्य को, सबपै एक समान ;
जलज, जलज की जाति के, जल को प्रिय जिमि प्रान ।

कौन ऐसा है, जो सौंदर्य को देखकर प्रसन्न नहीं होता ? किस पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता ? इसका असर सब पर एक-सा होता है । सुंदर वस्तु किसे प्रिय नहीं लगती ? कमल अपनी सुंदरता के ही कारण जल को प्राणों के समान प्यारा लगता है । तभी तो जल हमेशा उसे अपने शीश पर बिठाए रखता है । सौंदर्य के प्रभाव के सामने स्वभाव का प्रभाव काफ़ूर हो जाता है । जल का यह स्वभाव है कि कोई भी क्यों न हो, बस, हाथ पड़ते ही उसको डुबो देता है । किंतु कमल की कमनीयता को देखकर वह अपना काम करना भूल जाता है । सौंदर्य के कारण उसकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है, और तारीफ़ यह है कि कमल ही नहीं, बल्कि काष्ठादि जो कमल की जाति के हैं, उनको भी जल कमल ही के समान प्रिय समझता है—उन्हें कभी डुबोता नहीं, बल्कि उनके साथ अन्य जातिवालों की भी रक्षा करता है । जो प्रेम-पथ के पथिक हैं, उनसे यह बात छिपी हुई नहीं है कि किस प्रकार

जिसको हम प्यार करते हैं, उससे कुछ भी संबंध रखनेवाले हमें उसी की तरह प्यारे लगते हैं।

शेक्सपियर ने कहा है कि सोने की अपेक्षा सुंदरता को चोर जल्दी लगते हैं। यह बात शेक्सपियर ने बिलकुल पते की कही है। किसी ने कहा है—'सुवरण को ढूँढत फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर।' हम मानते हैं कि ढूँढते फिरते हैं, किंतु तभी तक कि जब तक सौंदर्य के दर्शन नहीं होते। सौंदर्य को देखते ही चोर चोरी करना भूल जाता है, कवियों की क़लम उनके कर में ही रह जाती है। सौंदर्य को देखकर कवि और उनकी क़लम दोनों भौचक्के-से रह जाते हैं। अब रहे व्यभिचारी, सो उन बेचारों को तो सौंदर्य को देखर सुध ही नहीं रहती।

ज्योतिस्वरूप की ज्योति

राधा हिये निवास हित, कीन्ह जोतिमय थान ;
जोति पिंड निकस्यो हिये ताहि दिवाकर जान।

वेदांतियों ने ईश्वर को 'ज्योतिमय', 'ज्योतिवरूप', 'चिद्रूप' इत्यादि कहकर उसके गुण-गान किया है। उनके मतानुसार इसका शरीर ज्योतिमय है, केवल ज्योति का बना हुआ है। इन्हीं ज्योतिस्वरूप भगवान् की प्रियतमा राधिकाजी हैं। वे इनको बहुत ही प्यारी हैं। प्यारी वस्तु को निवास के लिये हमेशा सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता है। जब कोई हमारा प्यारा हमसे मिलने आता है, तो हम स्नेहवश उसको नित्य अपने साथ ही रखते हैं। अपने दिल का कुल हाल उससे कहते हैं।

हृदय से बढ़कर शरीर का और कोई स्थान उत्कृष्ट नहीं। वही प्रेम का स्थल है, वहीं से प्रेम-स्रोत का प्रवाह प्रकट होता है। मनुष्य के सबसे उत्कृष्ट विचार हृदय से ही उठते हैं, अतः उचित ही था कि भगवान् अपने प्राणों से भी प्यारी प्रेयसी राधिका को उसी स्थान में रखते। परंतु वह स्थान तो पहले से ही अन्य के अधिकार में था। उस जगह ज्योति की

जगमगाहट थी। अतः उन्हें यह कार्यवाही करनी पड़ी कि जितना स्थान राधाजी को सुखपूर्वक निवास के लिये चाहिए था, उतना ही ज्योति-पिंड वहाँ से निकाल लिया और आकाश को शून्य ज्ञान और दान का उपयुक्त पात्र समझ, वह ज्योति-दान उसी को दिया, जिसको आज भी वह सूर्यरूप में अपने हृदय में धारण करता है।

नेह का न्यायालय

आपहि को अपराध, न्यायालय में आपक ;
पूरहु मारी साध, सच्चो-सच्चो न्याय करि ।

आप ही की अदालत है और आप ही पर मुक़दमा दायर किया गया है और आप ही जज हैं । अतः न्याय करिएगा। आप इंसाफ़-पसंद हाकिम हैं। देखना, फ़ैसला सोच-समझकर सुनाना । मामला नाज़ुक है। आपको अपने ही ख़िलाफ़ फ़ैसला सुनाना है । यह बड़ी हिम्मत का काम है।

बेशक, न्यायाधीश साक्षात् न्याय की मूर्ति होना चाहिए। तभी न्याय की आशा की जा सकती है । सायल का इंसाफ़ के लिये बार-बार चिल्लाना वाजिब है। आजकल अदालतों में जिस क़िस्म की कार्यवाही होती है, जैसा इंसाफ़ होता है वह किसी से छिपा नहीं है । आजकल इंसाफ़ पाना दुश्वार है। किंतु मानव-स्वभाव है कि आशा बनी ही रहती है । फिर सायल क्यों आशा से हाथ धोवे । जो कुछ होगा, देखा जायगा । अगर इंसाफ़ के लिये इस क़दर फ़रियाद करने पर भी जो न्याय का गला घोंटा जाय, तो फिर सायल को चाहिए कि जैसे हो वैसे उस सबसे बड़ी अदालत

में पहुँचे कि जहाँ का न्यायाधीश सदा न्याय ही किया करता है; जिसके सामने भिखारी और बादशाह दोनों एक हैं।

मगर शायद हम ग़लती करते हैं। कविजी ने तो नेह के न्यायालय में मुक़दमा दायर किया है, जहाँ पर जो हारता है, वही जीतता है। नेह का न्यायालय ही जो ठहरा।

विधि का विज्ञापन

नभ पाती विधि कर लिखी, छन-छन करत बखान;
काहू के रहत न कभू, सब दिन एक समान।

कोई चतुर नायक किसी मानिनी नायिका से कह रहा है कि तू इतना मान न कर। देख, यह रूप-यौवन हमेशा नहीं रहता है। अतः मान का परित्याग कर प्रेमपूर्वक मुझसे मिल। तू देखती नहीं है कि दुनिया में कोई भी चीज़ सदा क़ायम नहीं रहती है। आकाश की ओर देख। यह विधि के हाथ का लिखा हुआ पत्र है, और क्षण-क्षण पर यह पत्र इस बात को बतलाता है कि सब दिन एक समान कभी किसी के नहीं रहते।

वास्तव में बड़ी सुंदर पाती है। विधि की पाती जो ठहरी, सुंदर क्यों न हो। भला इस पाती को पढ़कर कौन मानिनी मान छोड़कर अपने प्राणपति के गले न जा लगेगी।

विधि ने 'एडवर्टाइज़' करने का अच्छा तरीक़ा निकाला है। यह तो एडवर्टाइज़मेंट के आर्ट में अगुआ अमरीका से भी आगे बढ़ गया। आकाश से बढ़कर इसके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त हो सकता है ? यहाँ से यह विधि का विज्ञापन

बराबर विश्व की आँखों के सम्मुख बना रहता है। इस विज्ञापन की सत्यता में शक कर ही कौन सकता है? कौन नहीं जानता कि इस परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन का पुच्छ प्रत्येक पदार्थ के पीछे लगा हुआ है? प्रकृति का नियम ही ऐसा है। फिर इसे कौन टाल सकता है? सूर्य कभी उदय होता है, तो कभी अस्त होता है। पूर्व में उदय होता है, तो पश्चिम में अस्त होता है। कभी दिन है, तो कभी रात। कभी अँधेरी रात है, तो कभी चाँदनी। कभी चंद्रदेव के दर्शन होते हैं, तो कभी केवल तारे ही टिमटिमाते हुए नज़र आते हैं। कभी निर्मल नभ नज़र आता है, तो कभी घन की घटाएँ अपनी छटाएँ दिखलाती हैं। कभी इंद्र-धनुष का आनंद है, तो कभी बिजली की बहार है। कभी वर्षा है, तो कभी वेगवान् वायु का बवंडर।

सारांश, हम किसी भी वस्तु को स्थायी रूप में नहीं पाते हैं। अतः हमको किसी भी कार्य को अनुकूल अवसर मिलते ही शीघ्र कर डालना चाहिए, और सुख में फूलना नहीं चाहिए तथा दुःख में घबराना नहीं चाहिए।

नायकों को चाहिए कि नायिकाओं के मान करते ही उन्हें विधि की पाती पढ़ा दिया करें। पढ़ते ही उनका सारा मान काफ़ूर हो जायगा।

प्रेम-प्रताप

जहाँ प्रेम राजत रहत, श्रम नाहिं तहाँ लखात ;
करन परत जो श्रम तऊ, सब कहँ उहै सुहात ।

प्रेम में परिश्रम नहीं प्रतीत होता, बल्कि परिश्रम यदि करना भी पड़े, तो और अच्छा लगता है। बिलकुल ठीक है। इसकी ताईद वे लोग करेंगे, जो प्रेम की भक्ति करते हैं। जन्म-भूमि के प्रेम के कारण मनुष्य कैसी-कैसी मुसीबतों का सहर्ष सामना करने को तैयार होता है। माता अपने बाल-बच्चों के प्रेम में कैसे-कैसे कष्ट सहन करती है। प्रेमी अपने प्रेमिका की आज्ञा का पालन कितना प्रेमपूर्वक करता है, फिर चाहे उसे उसमें कितनी ही तकलीफ़ें क्यों न उठानी पड़ें। दो मित्र एक दूसरे का काम कैसी प्रसन्नता से करते हैं। प्रेम के प्रताप से मृत्यु-शय्या पुष्प-शय्या के सदृश प्रतीत होती है।

किंतु—'यह प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धार पै धावनो है।' यह प्रेम ही की शक्ति है कि पतंग दीपक पर हँसता-हँसता अपने प्यारे प्राणों को न्योछावर कर देता है। अपने माशूक़ की मुहब्बत में आशिक़ों को महान् मुसीबतों का सहर्ष मुक़ाबला करते देखा गया है।

प्रेम परमेश्वर है। कई दफ़े देखा गया है कि इश्क़मजाज़ी इश्क़ हक़ीक़ी में तबदील हो जाता है। किसी ने कहा है—

बुतों के इश्क़ से हम मश्क किया करते हैं;
यक बयक लौ है ख़ुदा से तो लगाना दुश्वार।

एक शायर के ख़ुदा तो ख़ुद अपने मुँह से फ़रमाते हैं कि—

गर मुझसे मिला चाहे तो कर सिजदा बुतों को;
बुत मेरी ही सूरत हैं और बुतख़ाना मैं ही हूँ।

प्रेम-परमेश्वर

प्रेम भक्ति सों ज्ञान है, प्रेम भक्ति सों मुक्ति ;
परमेश्वर है प्रेम हू, सच मानहु यह उक्ति ।

प्रेम की भक्ति से ही ज्ञान उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रेमी पुरुष ही ज्ञानी हैं, और प्रेम की भक्ति से ही मुक्ति है, अर्थात् प्रेमी पुरुषों का ही मोक्ष होता है। प्रेम ही परमेश्वर है, इस कथन को सत्य मानिए। वास्तव में सच्चे ज्ञानी वे ही हैं, जिन्होंने प्रेम के तत्त्व को समझ लिया है।

'ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।' जिसने प्रेम का प्रकृत पाठ पढ़ा है, वही पूर्ण पंडित है, वही विचक्षण विद्वान् है, वही गंभीर ज्ञानी है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।'

प्रकृति स्वयं हमें पल-पल पर प्रेम का पाठ पढ़ाती है। सूर्य का विना किसी स्वार्थ के सरोज को स्फुटित करने के लिये समय पर उदय होना, चाँद का कुमुदिनी के लिये निष्काम नृत्य करना ; पपीहे की पिउ-पिउ की टेर पर और केकी की कूक पर मेघों का जल-वृष्टि करना, पक्षियों का मीठे-मीठे गाने गाना, वृक्षों का फलना-फूलना आदि जितनी बातें दृष्टिगोचर होती हैं,

सब इस बात को प्रमाणित करती हैं कि ये सब 'वसुधैव कुटुम्ब-कम्' के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। इनके हृदय में सबके प्रति प्रेम है। बस, इसी प्रेम को ज्ञान कहते हैं। प्रेम की भक्ति से उपर्युक्त सच्चे ज्ञान को प्राप्ति होते हो, बेचारी मुक्ति हमारे चरणों में लोटने लगती है। भला जब प्रेम के प्रताप से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो गई, फिर क्या है। मुक्ति तो दासी के सदृश हमारी आज्ञानुसार सेवा करने को तैयार रहती है।

पाठको! प्रेम एक महान् शक्ति है। इसके सहारे से वास्तव में मनुष्य नर से नारायण बन सकता है। प्रेम की उपासना करते-करते मनुष्य स्वयं परमेश्वर बन जाता है, क्योंकि प्रेम ही तो परमेश्वर है। क्या यह बात आपसे छिपी हुई है कि प्रेम के वशीभूत होकर भगवान् भक्तों को तुरंत दर्शन देते हैं? अब इसका रहस्य आप समझ लीजिए। पहले कहा जा चुका है कि प्रेम ही परमेश्वर है। बस, ज्यों ही भगवान् के प्रति भक्तों का प्रेम पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, त्यों ही वही उनका प्रेम परमेश्वर के रूप में उनकी आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

"कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।"

इति शुभम्